हरियाणा

सांस्कृतिक दिग्दर्शन

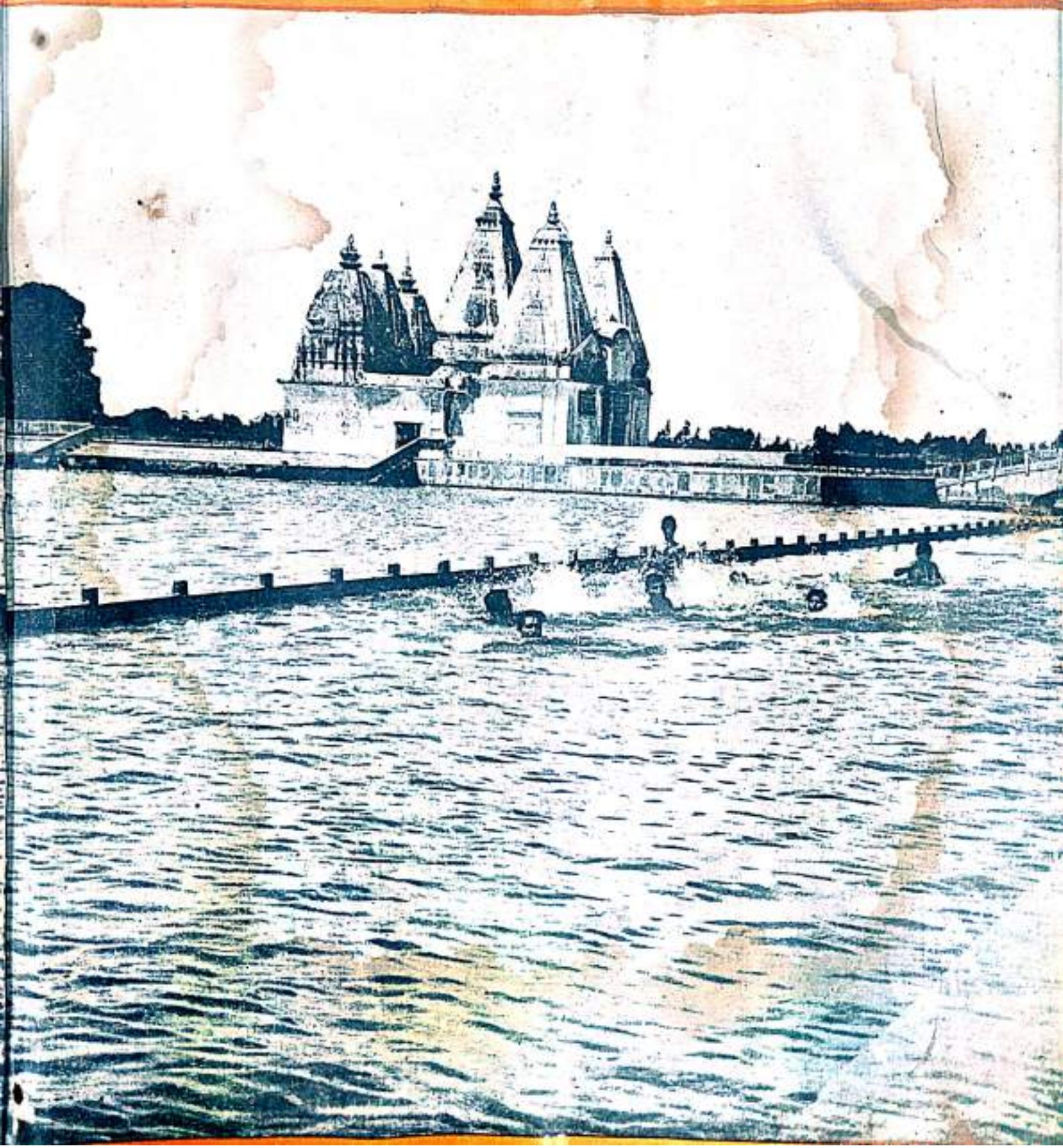

हरियाणा

[सांस्कृतिक दिग्दर्शन]

हरियाणा के इतिहास, संस्कृति, जन जीवन, लोक धारा और साहित्य का दिग्दर्शक एक संदर्भ ग्रंथ

हरियाणा लोक-सम्पर्क प्रकाशन

प्रकाशक :

एस० वाई० कुरेशी
निदेशक,
लोक सम्पर्क एवं सांस्कृतिक कार्य
हरियाणा, चण्डीगढ़

संकलन :

पुष्पा जैन एवं
सत्य पाल गुप्त

सहयोगी :

श्रुतिप्रकाश वाशिष्ठ एवं
तुलसी राम जरयाल

कला :

सोहन लाल दीवान

छाया चित्र :

विभागीय फोटो अनुभाग

मुद्रण :

राजकीय प्रेस
संघीय क्षेत्र
चण्डीगढ़

प्रथम आवृत्ति 1978 :

[2000 प्रतियां]

मूल्य :

निःशुल्क वितरणार्थ

अनुक्रमणिका

	विषय		पृष्ठ
1.	एक प्रयास एस० वाई० कुरैशी	..	7
अभिनन्दन गीत :			
2.	देस्सां मां देस हरियाणा —डॉ० प्रभाकर माचवे	..	11
3.	हरियाणे की लली —डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'	..	12
4.	ज्योति सर —डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'	..	13
5.	देव-भूमि —उदय भानु 'हंस'	..	14
6.	ऋषि मुनियों की तपोभूमि —खुशी राम शर्मा वाशिष्ठ	..	15
7.	हरे-भरे हरियाणा का.... —विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक'	..	16
8.	तेरा वन्दन, तेरा पूजन —देवी शंकर प्रभाकर	..	17
इतिहास :			
9.	हरियाणा : एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण —डॉ० बुद्ध प्रकाश	..	37
10.	जय हरियाणा —डॉ० वृन्दावन शर्मा	..	49
11.	हरियाणा का पुरातत्व —जगन्नाथ अग्रवाल	..	55
12.	हरियाणा का अतीत और भविष्य की सम्भावनाएं —मौलि चन्द्र शर्मा	..	69
13.	भारत के स्वाधीनता संग्राम में हरियाणा का योगदान —डॉ० राम प्रकाश	..	71

विषय		पृष्ठ
14. वीर भूमि हरियाणा —डॉ० जय भगवान गोयल	..	79

संस्कृति :

15. हरियाणा की संस्कृति —स्वामी ओउमानन्द सरस्वती	..	97
16. हरियाणा का जन-जीवन : बेशुमार यादें —विष्णु प्रभाकर	..	112
17. हरियाणा का सांस्कृतिक विरसा —सेठ गोविन्द दास	..	115
18. पं० लखमी चंद —कृष्ण चन्द्र शर्मा	..	119
19. हरियाणा के तीज-त्यौहार —राजेन्द्र	..	133

साहित्य :

20. संस्कृत साहित्य को हरियाणा का योगदान —डॉ० राम गोपाल	..	147
21. हरियाणा का प्राचीन हिन्दी साहित्य —डॉ० देवेन्द्र सिंह 'विद्यार्थी'	..	151
22. हिन्दी साहित्य को हरियाणा की देन —क्षेम चन्द्र 'सुमन'	..	182
23. हरियाणा के पंथ-प्रवर्तक संत —डॉ० रणजीत सिंह	..	187
24. हाली—एक अज़ीम शायर : अज़ीम इन्सान —एस० वाई० कुरैशी	..	190
25. हरियाणा की नाट्य परम्परा —डॉ० शंकर लाल यादव	..	195
26. हरियाणवी का संक्षिप्त विवरण —डॉ० जगदेव सिंह	..	206
27. नाट्य-कला की जन्म-भूमि —चिरंजीत	..	232
28. हरियाणा के लोक गीत : एक विशिष्ट अध्ययन —डॉ० भीम सिंह	..	235
29. हरियाणा की साहित्यिक परम्परा —कश्मीरी लाल जाकिर	..	263
30. लेखक परिचय	..	289

हरियाणवी का संक्षिप्त विवरण

—डॉ० जगदेव सिंह—

वर्तमान हरियाणा तथा दिल्ली प्रशासन का देहात हरियाणवी के अन्तर्गत है। इसके अतिरिक्त सीमावर्ती कौन-सा भाग इस में सम्मिलित है—इसका निर्णय व्यापक भाषा-सर्वेक्षण के आधार पर ही हो सकता है। पर मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि हरियाणवी के उत्तर-पश्चिम में पंजाबी, उत्तर-पूर्व में खड़ी बोली, दक्षिण-पूर्व में ब्रज तथा दक्षिण-पश्चिम में राजस्थानी बोली जाती है। पड़ौसी बोलियों का थोड़ा बहुत प्रभाव हरियाणवी पर पड़ा है और हरियाणवी का उन पर। यह स्वाभाविक ही है। भाषाओं में परस्पर लेन-देन चलता रहता है। इसके बोलने वालों की संख्या अनुमानतः 75,00,000 है।

हरियाणवी का विवरण—ऊपर कहा गया है कि हरियाणवी एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में बोली जाती है। स्थानभेद के कारण इसकी कई उपबोलियां हैं। एक ही बस्ती में रहने वाली सामाजिक श्रेणियों की बोली अपनी-अपनी विशेषता से युक्त होती है। स्त्री और पुरुषों की बोली में भी अन्तर पाया जाता है। गांव की लड़कियां विवाह के बाद अपनी ससुराल में अन्यत्र चली जाती हैं और बहुएं दूसरे गांवों से आकर वहां रहने लगती हैं। इस तरह प्रत्येक गांव में स्त्रियां नाना स्थानों से आती हैं और अपने साथ उन स्थानों की बोली की विशेषताओं को भी लाती हैं। इसलिये स्त्रियों की बोली पर दोनों स्थानों की बोलियों का प्रभाव लक्षित होता है। इसके विपरीत पुरुष प्रायः स्थायी होते है। भले ही कुछ पुरुष नौकरी तथा व्यवसाय के लिये अस्थायी तौर पर कुछ काल के लिए प्रवास करते हैं। वे भी अपने साथ प्रवास से कुछ नए शब्द ले आते हैं। आयु की दृष्टि से भी बाल, युवा तथा वृद्धों की बोली में भी अन्तर पाया जाता है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति की बोली की अपनी कुछ विशेषतायें होती हैं। तभी तो हम अन्धेरे में भी पहचान लेते हैं कि अमुक व्यक्ति बोल रहा है। ऐसी अवस्था में प्रश्न उठता है कि अध्ययन तथा विश्लेषण के लिए सामग्री का संग्रह कहां से करें, किस की बोली को आदर्श मानें, और क्यों? यह तो स्पष्ट ही है कि भाषा की अभिव्यक्ति तो व्यक्ति की वाणी द्वारा ही होती है। अध्ययन प्रारम्भ करते समय तो पाठ-संग्रह किसी व्यक्ति विशेष से ही किया जायेगा। इसके अतिरिक्त और चारा भी क्या हो सकता है? यदि अध्ययन भाषा के सामान्य रूप का करना अभीष्ट है तो फिर व्यक्ति विशेष को छांटते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह उस सामाजिक श्रेणी का सदस्य हो, जो उस स्थान पर अधिक संख्या में पाई जाती है। यदि किसी व्यवसाय या श्रेणी विशेष की बोली का अध्ययन करना है तो बात दूसरी है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति ऐसा होना चाहिए, जो जन्म से एक ही स्थान पर रह रहा हो और जिस पर किसी अन्य बोली का प्रभाव न पड़ा हो। आयु की दृष्टि से न बहुत छोटा हो न बड़ा। ऐसे व्यक्ति की बोली के नमूनों का संग्रह ध्वनि लिपि में किया जाता है। संभव हो तो उसकी बोली का रिकार्ड भी तैयार कर लिया जाता है। इसका एक लाभ यह है कि कोई भी भाषाशास्त्री इस सामग्री का बाद में परीक्षण कर सकता है और स्वयं विश्लेशण करके उससे निष्कर्ष निकाल सकता है। आवश्यकता पड़ने पर उस स्थान पर रहने वाले अन्य व्यक्तियों की बोली के साथ उन नमूनों की तुलना की जा सकती है। ऐसा करना समीचीन ही होता है। हरियाणवी के प्रस्तुत अध्ययन के लिये लेखक ने अपनी बोली को आदर्श माना है। उसकी जांच अपने भाई तथा अन्य व्यक्तियों के प्रयोगों से कर ली है। अतः बोली के जिस रूप का विवरण दिया गया है, वह पूर्णतया समरूप है। उसमें प्रयोग-वैषम्य नहीं। इस रूप में यह विश्लेषण, स्पष्ट ही हरियाणवी की सभी उपबोलियों का प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं कर सकता। यह भगवतीपुर गांव की उस बोली का विवरण है, जिसे जाट लोग बोलते हैं। लेखक रोहतक जिले के भगवतीपुर गांव का रहने वाला है। यह गांव रोहतक से उत्तर-पश्चिम की ओर दिल्ली से फिरोजपुर जाने वाली रेलवे लाइन पर समर-गोपालपुर स्टेशन से सवा मील दूर है तथा रोहतक से जींद जाने वाली सड़क पर रोहतक से कोई सात मील। इस गांव की बोली लेखक की मातृ बोली है। प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई थी। हाई स्कूल तथा उच्च शिक्षा रोहतक और

लाहौर में। पिछले 30 वर्ष से अध्ययन कार्य कर रहा है। अपनी मातृ-बोली से उसका सम्बन्ध सतत बना रहा है। उसका परिचय संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से है। इनका कुछ प्रभाव उसकी बोली पर हो सकता है। जहां तक हो सका है, इस अध्ययन को इन भाषाओं के प्रभावों से मुक्त रखा गया है। गांव में रहने वाली अन्य जातियों की बोली इससे विशेष भिन्न नहीं है। सभी ग्राम-निवासी एक दूसरे की बातचीत को पूरी तरह समझते हैं। पास पड़ौस के लोग भी इसे पूरी तरह समझते हैं और उनकी बोली को भगवतीपुर वाले। मोटे तौर पर यह उन पड़ौसी गांवों की बोलियों का भी विश्लेषण समझा जा सकता है। इसे हरियाणवी का अध्ययन इसलिये कहा जा रहा है कि सामान्यतः अन्य बोलियों का ढांचा भी प्रस्तुत ढांचे से मिलता जुलता है। थोड़ा बहुत अन्तर तो होना आवश्यक ही है। (विस्तृत परिचय के लिए देखिए लेखक की 'बांगरू का विवरणात्मक व्याकरण. (अंग्रेजी)। यह ग्रन्थ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से 1970 में प्रकाशित हुआ है।)

यह विवरण तीन शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है। ये हैं (1) ध्वनि संरचना, (2) रूप संरचना तथा (3) वाक्य संरचना।

ध्वनि संरचना—यदि हमें किसी ऐसी भाषा को सुनने का संयोग हो, जिसे हम न समझते हों तो लगता है कि बोलने वाला मानो सभी कुछ एक सांस में कहना चाहता है। ध्वनियां प्रवाह रूप से अविरल मुख से निःसृत होती लगती हैं। वस्तुतः है भी कुछ ऐसी ही बात। भाषण क्रिया अविच्छिन्न होती है। उसमें विराम तभी होता है जब हम सांस लेने के लिये रुकते हैं। बोलने की क्रिया कालाधीन है। काल धर्म के अनुसार प्रत्येक घटना पूर्वापर आविर्भूत होने वाली क्रियाओं की शृंखला मात्र है। भाषण व्यापार में ध्वनियां एक-दूसरे से संश्लिष्ट होते हुए भी अलग की जा सकती हैं। श्रोता यह प्रत्यक्ष अनुभव भी करता है कि वह अलग-अलग ध्वनियां सुन रहा है। अविच्छिन्नता के कारण भाषण का अलग ध्वनि-इकाइयों में विश्लेषण नहीं हो सकेगा—ऐसी बात नहीं है। हां, कभी-कभी दो ध्वनियों की सीमा-रेखा का निर्धारण दुरूह-सा जान पड़ता है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से भाषण के ये खण्ड अनन्त हो सकते हैं और प्रत्येक खण्ड का स्वरूप, आकृति हर दूसरे ध्वनि खण्ड से भिन्न होगी। 'कील' और 'कूल' में उच्चारित 'क्' हमारे कानों को सम्भवतः एक-समान ही लगते हैं जबकि वस्तुतः यह भिन्न हैं। भाषा में ध्वनियां केवल ध्वनि के रूप में प्रयुक्त नहीं होतीं, प्रत्युत उनका एक व्यापार है। वे अर्थ को प्रकट करती हैं। वक्ता कुछ कहने के लिये ही उनका प्रयोग करता है। अतः हम ध्वनियों के उन भेदों की ओर ही ध्यान देते हैं जो अर्थ प्रकट करने में सहायक हैं। दूसरे शब्दों में जो अर्थविभेदक हैं। 'कील' में बोले जाने वाले क् को यदि 'कूल' के क् के स्थान पर बोल दिया जाए तो हिन्दी भाषा में उसका कोई दूसरा अर्थ नहीं बन पायेगा। अतः हिन्दी भाषी इन दो 'क्' के सूक्ष्म भेद की उपेक्षा कर छोड़ता है। पर 'कल' और 'खल' में पाये जाने वाले 'क्' और 'ख्' के भेद की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन दोनों ध्वनियों में जो अन्तर है, उसका हिन्दी भाषा में महत्व है। एक के स्थान में दूसरे का प्रयोग करने से अर्थ में गड़बड़ पड़ जायेगी। 'क्' और 'ख्' का भले ही अपना कोई अर्थ नहीं है, पर इनके भिन्न होने के कारण ही ये दोनों पद भिन्नार्थक हैं। भाषण में यद्यपि असंख्य ध्वनियों का व्यवहार होता है, पर भाषा की संरचना के लिए थोड़ी-सी ऐसी ध्वनियां ही व्यवहृत होती हैं जो अर्थ विभेद करने में समर्थ हों। ऐसी ध्वनियों की संख्या किसी भी भाषा में अधिक नहीं होती। यही भाषा की संरचना के निर्माण की आधार भित्ति है। निष्प्रयोजन भिन्नता भाषा की संरचना की दृष्टि से उपेक्षणीय है। पर सही उच्चारण करने के लिये तो हमें इन सूक्ष्म भेदों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। भाषा वैज्ञानिक को इनका विवरण भी उपस्थित करना होता है। यथा हिन्दी 'पलता' और 'पलटा' में क्रमशः दन्त्य और मूर्धन्य 'ल्' प्रयुक्त हैं। इस प्रकार के अन्तर परिस्थितिजन्य होते हैं। अतः इनके लिये सामान्य नियम बनाये जा सकते हैं। भाषा के व्याकरण में इन नियमों का समावेश भी अत्यावश्यक है।

ध्वनि संरचना—हरियाणवी में पाई जाने वाली ध्वनियों के निम्न भेद हैं:—

(क) **खण्डीय ध्वनियां** :—

1. व्यंजन
2. स्वर।

(ख) खण्डेतर ध्वनियां :—

1. सुर
2. आन्तसुर
3. विवृति
4. अनुनासिकता ।

नीचे इनका विवरण उदाहरण-सहित दिया जाता है।

(क) **व्यंजन**—हरियाणवी में ये 32 व्यंजन हैं—प फ ब भ त थ द ध ट ठ ड ढ च छ ज झ क ख ग घ म न ण ङ व य र ल ळ ड़ स ह । ध्वनियों का विवरण तीन प्रकार से किया जाता है—(1) उच्चारण की दृष्टि से, (2) श्रवणता की दृष्टि से तथा (3) ध्वनि की दृष्टि से। उच्चारण की दृष्टि से इनका वर्णन अपेक्षया अधिक सरल है। प्राचीन काल से वैज्ञानिक इस ढंग को अपनाते आ रहे हैं । कोई भी स्वयं इसका निरीक्षण कर सकता है। वाक् अवयव हमारे शरीर में ही स्थित हैं। ध्वनियों के पूर्ण विवरण के लिये यह जानना आवश्यक है कि कौन-सी ध्वनि किस-किस अवयव की सहायता से और किस ढंग से उत्पन्न हो रही है। कुछ अवयवों की स्थिति स्थिर है। वे अपने स्थान से इधर-उधर नहीं हो सकते। कुछ अवयव अधिक लचकीले हैं। वे इधर-उधर गतिशील हो सकते हैं। इन्हें **करण** कहते हैं। और पहलों को **उच्चारण स्थान** या केवल **स्थान**-करण और स्थान का सम्पर्क अनेकविध होता है। इस व्यापार को **प्रयत्न (आभ्यन्तर)** कहते हैं। इसके अतिरिक्त ध्वनियों के अन्य गुण भी हैं, जो अवयवों की विशेष स्थिति या क्रिया से पैदा होते हैं। इन्हें **अनुप्रदान** या **बाह्य प्रयत्न** कहा जाता है। हरियाणवी व्यंजनों के विवरण के लिये निम्न उच्चारण तत्वों की आवश्यकता पड़ती है।

(क)

उच्चारण स्थान

1. ओष्ठ (ऊपर का)
2. दन्त
3. तालु
4. कण्ठ
5. काकल

(ख)

करण

6. अधर (निचला ओष्ठ)
7. जिह्वाग्र-उपरितल
8. जिह्वाग्र-निम्न तल
9. जिह्वा मध्य
10. जिह्वा पश्च
11. स्वर तन्त्री

(ग)

आभ्यन्तर प्रयत्न

12. स्पर्श
13. संघर्षण
14. पार्श्विक संघर्षण
15. लोडन
16. उत्क्षेपण

(घ)

बाह्य प्रयत्न

17. नाद
18. महाप्राणता
19. अनुनासिकता

उदाहरण के तौर पर 'प्' का विवरण होगा—(द्वि=) ओष्ठ्य, अघोष, अल्पप्राण, स्पर्श । इसी प्रकार "भ्" का—ओष्ठ्य, घोष, महाप्राण, स्पर्श। 'बे' और 'भ' में अन्तर केवल अनुनासिकता का होगा अन्यथा दोनों ही ओष्ठ्य, घोष तथा अल्प प्राण होंगे । 'ल्', 'ड़्' और 'ण' तीनों ही मूर्धन्य, घोष, अल्पप्राण तथा लुंठित हैं । अन्तर केवल इतना है कि 'ल्' पार्श्विक है, 'ण' नासिक्य और 'ड़्' न पार्श्विक न नासिक्य। इस विश्लेषण से हम जान पायेंगे कि किन ध्वनियों में कितना साम्य या अन्तर है।

भाषा में अर्थ भेद को सुरक्षित रखने वाली ध्वनियां स्वनिम कहलाती हैं। समान परिस्थितियों में ये विरोध प्रकट करती हैं। नीचे नमूने के तौर पर हम कुछ पद उद्धृत करते हैं, जो विरोध प्रकट करते हैं ।

काट = लकड़ी
खाट = चारपाई
गाट = गार्ड
घाट = घाट
चोटा = लम्बी चोटी
छोटा = छोटा
जोटा = विश्राम
झोटा = भैंसा
टोर = गेंद को लकड़ी से दूर फैंकना
ठोर = लाठी का सिरा
डोर्‌य = रस्सी
ढोर = पशु
तान = सुर
थान = कपड़े का थान
दान = दान
धान = धान, चावल
पाल् = टीला
फाल् = बड़ी फाली
बाल् = केश
भाल् = देखरेख

साला = साला
हाला = लगान
आला = दीवार में बनी छोटी अलमारी
काम = कार्य
कान = कान
काण्य = शर्म
कां = खेल में हारने वाले की खिलाने की बारी
तनखा = वेतन
तमगा = पदक
तिंणका = तिनका
लाला = बनिया
लाला = गन्ने का गाढ़ा रस
लाड़ा = औकीन
लांडा = पुच्छहीन
लारा = जनप्रवाह
पाल = बैल को ओढ़ाने की चद्दर
पाड़ = सेंध
पार = यमुना पार का प्रदेश
पेड़ी = छोटा पेड़

इनमें से कुछ व्यंजनों के स्थिति—जन्य प्रभेद भी पाये जाते हैं ; यथा, पदान्त में महाप्राणता तथा नाद की मात्रा कम हो जाती है । मूर्धन्य स्पर्श से पूर्व 'ण्' स्पर्श है अन्यत्र लोडित ; जैसे कण्ठी-माला, काणा—काना, बाण में । इसी प्रकार 'न्' के भी दो रूप हैं, एक दन्त्य और दूसरा तालव्य स्पर्श से पूर्व ; जैसे सन्त, पंजा आदि में । इ से पूर्व व्यंजन का तालव्यीकरण हो जाता है, जैसे किँला (क्यिँला)-किला, सिँर (स्यिँर)—सिर । मूर्धन्य ध्वनियों से पूर्व 'ल्' भी मूर्धन्य उच्चारित होता है । इसका उदाहरण पहले दे चुके हैं । 'ह्' अघोष स्पर्श के साथ अघोष हो जाता है, यथा पत्होर-जुआर के सूखे पत्ते ।

व्यंजनों में मात्राभेद—उच्चारण की दृष्टि से हरियाणवी में व्यंजनों में तीन मात्राएं पाई जाती हैं—साधारण, अर्धदीर्घ, दीर्घ । दीर्घ व्यंजन अधिकतर दो अक्षरों वाले पदों में स्वरों के बीच पाये जाते हैं । पूर्व स्वर सदा ह्रस्व होता है । 'ण ङ ल् ड़ ह य व' के अतिरिक्त सभी व्यंजन दीर्घ हो सकते हैं । साधारण व्यंजन भी स्वरों के बीच ही आते हैं और दीर्घ व्यंजनों के साथ विरोध प्रकट करते हैं । यथा, पता : पत्ता ; कटा—कटाव : कट्टा—सीमेंट की बोरी ; कतल—हनन : कत्तल—टुकड़ा ।

दो स्वरों की बीच दीर्घ स्वर के बाद व्यंजन सदा अर्धदीर्घ होता है । इसका साधारण तथा दीर्घ व्यंजन से कोई विरोध नहीं । पद में दीर्घ स्वर को देख कर ही इसकी सत्ता का पता लग जाता है । जैसे, गोसा-उपला, आलू, कूता—कुत्ता । यहां स् ल तथा त् क्रमश: अर्धदीर्घ हैं ।

व्यंजन के साथ 'ह य स' का संयोग होने पर भी व्यंजन की मात्रा दीर्घ तथा अर्धदीर्घ हो सकती है । यथा, बर्हा—रस्सी ; फर्ह्यां—झंडियां ; गोड्यां—घुटनों ; गोस्या—उपलों, आदि शब्दों में ।

व्यंजनों का वितरण—पद में व्यंजनों के वितरण पर कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं है । ण ङ ल् ड़ पद के आदि में नहीं आते और 'य' पदान्त में । 'व' भी अन्त में गिने चुने पदों में ही आता है । शेष व्यंजन पद के आदि, मध्य तथा अन्त में पाये जाते हैं । एक पद में सभी प्रकार के व्यंजन आ सकते हैं । प्राय: भिन्न वर्ग के दो महाप्राण स्पर्श एक पद में कम ही पाये जाते हैं ।

व्यंजन संयोग—पद के आदि और अन्त में बहुत कम प्रकार के व्यंजन संयोग मिलते हैं । दो व्यंजनों के संयोग में दूसरा व्यंजन 'य्' या 'ह्' होता है । 'य्' से पूर्व कोई भी व्यंजन आ सकता है । 'ह्' से पूर्व पद के आरम्भ में केवल 'म्, न्, ल्, य्, व्' तथा पदान्त में 'न्, ण्, ल्, ल' पाये जाते हैं । तीन व्यंजनों के संयोग में दूसरा और तीसरा व्यंजन क्रमश: 'ह्' और 'य्' होते हैं । पदान्त में संयोग समानवर्ग के नासिक्य और स्पर्श भी मिलते हैं । कुछ उदाहरण—क्यार—खेत, व्याणा—जन्म देना ; ध्यान, म्हंत—महन्त, ल्हासी—लस्सी, द्हाली—हल का एक भाग, व्हाई—हवाई, लुह्याज—शर्म, बाण्ह—वहिन, बाल्य—जलाओ, काल्ह्या—कल, सन्त—साधुजन ।

पद के मध्य नाना प्रकार के संयोग प्रचुरता से पाये जाते हैं । संयोग में पहले और दूसरे स्थान पर आने वाले व्यंजनों पर कोई रोक टोक नहीं । लोडित व्यंजन' ण् ल् ड़् का आपस में संयोग नहीं होता और न ही ये अन्य मूर्धन्य व्यंजनों से पूर्व आते हैं । 'न्' भी मूर्धन्य से पूर्व नहीं आता । 'ङ' केवल कवर्ग से पूर्व आता है । पद के दरम्यान आने वाले व्यंजन संयोगों का विवरण सुविधा के लिये निम्न रूप में प्रस्तुत किया जाता है:—

(1) **रूढ़ पद में**—रूढ़ पदों में प्राय: ये संयोग नहीं मिलते—

(क) दो महाप्राण

(ख) एक ही वर्ग के दो स्पर्श

(ग) 'ह्' का संयोग, अल्पप्राण स्पर्श तथा 'म् न् ण् ङ ल् ल र स' के साथ ही पाया जाता है । शेष व्यंजनों के संयोग पर कोई रुकावट नहीं । कुछ उदाहरण—बच्चा ; मुग्जी—किनारी ; सब्जी ; चिंम्टा ; गुट्का ; सर्हाणा—प्रशंसा करणा ; बुड़्हाना-वापिस बुलाना ।

(2) **यौगिक पद में**—यौगिक पदों में नाना प्रकार के संयोग मिलते हैं। संयोगान्त अंग के साथ व्यंजन से आरम्भ होने वाले प्रत्यय के जुड़ने से तीन या चार व्यंजनों के संयोग भी उद्भूत होते हैं। दो या अधिक व्यंजनों के संयोग में तीसरा व्यंजन प्राय: 'ह्' होता है, कभी-कभी 'र्' भी। चार व्यंजनों वाले संयोग में प्रथम व्यंजन नासिक्य या दीर्घ व्यंजन होता है। दो से अधिक स्पर्शों का संयोग संभव नहीं। कुछ उदाहरण: पछ्हान=पीछे की ओर; अग्हान=आगे की ओर; खेल्हदा=खेलता; बाम्हणां=बाह्मणां-ब्राह्मणों, सन्त्र्यां=सन्तरों; बुग्टयां=अंजलि भर-भर कर; बर्र्ह्यां=रस्सियों; साठ्य्मां=साठवां।

(3) **समस्त पद में**—समस्त पद में कुछ नए संयोग भी संभव हैं, जो अन्य अवस्थाओं में संभव नहीं। समास में आन्तर-विवृति भी यत्र तत्र होती है। कुछ विचित्र संयोगों के उदाहरण ये हैं—अठ्घरा=आठ घरों वाला मोहल्ला; लड़्खाणा=पिटने योग्य; मूंह्-फट=स्पष्टवक्ता; कन्टोप=कानों को ढकने वाली टोपी।

स्वर—स्वरों का विवरण उच्चारण की दृष्टि से ही दिया जा रहा है। फेफड़ों से बाहिर निकलता हुआ वायु-प्रवाह मुख में टकरा कर नाना ध्वनियां पैदा करता है। स्वरों के उच्चारण में वायु-प्रवाह का अवरोध कम से कम होता है। यदि उससे कम हो तो ध्वनि सुनाई नहीं देगी और यदि अधिक हो तो ध्वनि का गुण बदल जायेगा। वह ध्वनि व्यंजन गुण वाली बन जायेगी। जिह्वा का कोई न कोई भाग ऊपर नीचे उठ कर वायु का अवरोध करता है। तभी स्वरों की उत्पत्ति होती है। ओठों की आकृति भी इसमें विकार उत्पन्न कर सकती है। हरियाणवी में ई इ इँ ए ऐ ऊ उ उँ ओ औ अ आ—बारह स्वर पाये जाते हैं। इन का विवरण निम्न उच्चारणात्मक तत्वों के आधार पर किया जा सकता है।

1. जिह्वा का भाग—अग्र, मध्य, पश्च
2. जिह्वा की तालु से ऊंचाई संवृत, अर्धसंवृत, अर्धविवृत, विवृत।
3. ओठों की आकृति—गोल, चपटी।

नीचे दी गई तालिका से यह विवरण स्पष्ट हो जायेगा।

	अग्र	मध्य	पश्च
संवृत	ई		ऊ
अर्धसंवृत	इ इँ	अ उँ	उ
अर्धविवृत	ए		ओ
विवृत	ऐ	आ	औ

पश्च स्वरों के उच्चारण में ओठ गोलाकार होते हैं और अग्र व मध्य के लिए चपटे।

स्वरों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:—

(1) इँ उँ—ये सदा ह्रस्व हैं। इनके दीर्घ रूप नहीं होते।

(2) ए, ऐ, ओ, औ—ये सदा दीर्घ हैं। इनके ह्रस्वरूप नहीं होते।

(3) इ उ अ—ये ह्रस्व दीर्घ दोनों होते हैं। (अ आ को अका दीर्घ रूप माना गया है)।

नीचे हम स्वरों का विरोध प्रदर्शित करने वाले कुछ पद उद्धृत करते हैं।

सीर	—	साझा	सर	—	सरकण्डा
सिंर	—	सिर	सार	—	दीवार की चौड़ाई
सेर	—	सेर			

सैर	—	सैर	जीतणा	—	जीतना
सूर	—	सूअर	जितणा	—	जितना
सुँर	—	स्वर	जिँतणा	—	जीता जाना
सोर	—	शोर	उसा	—	वैसा
			ऊसा	—	उषा (लड़की का नाम)
सौड़	—	रजाई	बुँरा	—	बुरा
			बूरा	—	बूरा

स्वरों के उपरूप—परिस्थिति भेद से कुछ स्वरों के उपरूप पाये जाते हैं। जैसे, नासिक्य व्यंजनों के सम्पर्क में स्वर अनुनासिक हो जाते हैं—काम, चौणा=पशुओं का झुंड। अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में साधारणतया जिह्वा की स्थिति आस्य स्वरों के समान होती है, पर अर्धविवृत स्वर कुछ स्थितियों में अपेक्षाकृत कुछ विवृत हो जाते हैं; जैसे सोणा=नींद लेना; ल्यँएं=लेने पर। कण्ठ्य व्यंजनों के बाद आने वाले अग्र स्वर कुछ पीछे से बोले जाते हैं, जैसे नहर, कह, वह, आदि में। अन्य स्वरों की मात्रा 'ह' से पूर्व ह्रस्व हो जाती है, जैसे सींह=सिंह, मूंह=मुख, लोह=लोहा, आदि में। दीर्घ व्यंजनों से पूर्व, 'इँ' 'उँ' अपेक्षाकृत अधिक आतत होते हैं जैसे इँक्का=यक्का; कुँप्पा=कुप्पा आदि में। उँ सामान्यतः अर्धविवृत पश्च मध्य गोलाकार स्वर है। कुछ परिस्थितियों में यह मध्य भाग से बोला जाता है। 'अ' और 'उँ' में केवल यही अन्तर रह जाता है कि 'उँ' में ओंठ गोलाकार होते हैं और 'अ' में चिपटे या उदासीन। इसका वैकल्पिक उच्चारण 'अ' भी है। उदाहरण—बिँटुँल्वाणा ~ बिँटल्वाणा'=इकट्ठा करना; निँचुँड़वाणा ~ निँचड़वाणा=निचुड़वाना; बुँड़हाणा-वापिस बुलाना आदि में 'उँ' का उच्चारण "ओं" के निकट पहुँच जाता है।

अनुनासिकता—हरियाणवी के सभी स्वरों के दो रूप हैं—आस्य और अनुनासिक। अनुनासिकता का प्रभाव समान पद में अनुनासिक स्वर के पूर्व व बाद में आने वाले स्वर, 'य व ह' तथा ए (निपात) पर भी पड़ता है जैसे, दमूंहीं=दो मुंह वाली सर्पिणी; राखेँएं=अवश्य रखते, खुआंउं=खिलाऊं; चांहूं।

स्वर संयोग—हरियाणवी पदों में दो या अधिक स्वरों के संयोग मिलते हैं। व्यंजन से पूर्व पद के आदि में तो कोई स्वर संयोग नहीं मिलता। व्यंजनों के बीच दो से अधिक स्वरों के संयोग नहीं मिलते। जैसे, सूई, खोआ=कन्धा, लोई; बइआ=छोटी चिड़िया, मोइआ=सूत का गोला। अधिकतर संयोग यौगिक पदों में पाये जाते हैं। कुछ उदाहरण—पीऊ=पीने का इच्छुक, मारिन्यौ=मारना, नैआं=झुकें, पीइओ=पीजिये, ल्याइए=लाना, ठुआइए-उठवा दीजिये, बुँलाइओ=बुलाना; ठुआइए ए ना=मत उठवाना (ए निपात सहित)।

अक्षर रचना—अक्षर का आधार स्वर है। स्वर एकाकी भी अक्षर की रचना कर सकता है। इसके एक या दोनों ओर—दाहिने-बाएं व्यंजन आ सकते हैं। स्वरान्त अक्षर विवृत कहलाता है और व्यंजनान्त संवृत। पद में आदि अक्षर ण, ङ, ल्, ड़ से शुरू नहीं होता। ह्, र्, य्, ह्म् का अन्य व्यंजनों के साथ संयोग अक्षर के आदि और अन्त में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अपने वर्ग के स्पर्श का नासिक्य से मेल एक अक्षर में मिलता है। दीर्घ व्यंजन अक्षर-रचना में संयुक्त व्यंजनों के समान समझे जाते हैं। अतः चार प्रकार के अक्षर हो सकते हैं। (नीचे दिए फारमूले में 'अ' का अर्थ कोई स्वर, और 'क' का कोई व्यंजन या ऊपर बताये संयुक्त व्यंजन)।

(1) अ—आ, ए, ओ
अक—उत्, आल्,
कअ— पा, ल्या, ल्हा, म्हा
कअक—काट्, लोग्, ल्याज्, ख्याल्

एक पद में उतने ही अक्षर होते हैं, जितने उसमें स्वर। पद का आदि व्यंजन आगे आने वाले स्वर के साथ जुड़ता है। दो स्वरों के बीच में आने वाला व्यंजन अगले स्वर के साथ मिलता है। स्वरों के बीच आने वा ले

संयुक्त व दीर्घ व्यंजन पूर्व तथा पश्च स्वरों के साथ समविभक्त हो जाते हैं। जिन संयुक्त व्यंजनों में 'ह्, य्, र्, व्' आते हैं, उनका विभाजन नहीं होता। अक्षर विभाग के कुछ उदहारण यहां दिए जाते हैं। (-) चिन्ह अक्षर विभाग को सूचित करता है। आ-ला, का-ला, पक्-ड़ा, पा-कड़्य=पकड़ो; म्हा-रा=हमारा; लत्-ता=कपड़ा; साठ्-व्नां=साठवां, कुं-कर-मआं=कुकर्मिओं।

खण्डेतर स्वनिम:—खण्डेतर स्वनिम निम्न हैं:—

(1) **सुर**—यें तीन हैं; उच्च (3), मध्यग (2), नीच (1)।

(2) **आन्तसुर**—ये चार हैं: सम →, उन्नायक ↑,
अवनायक ↓, निम्न उन्नायक→।

(3) **विवृति**—यें चार हैं: आन्तिक; कोमा (,); बाह्य (रिक्त स्थान); आंतरिक *

विवरण व उदाहरण—हरियाणवी में सुरों के तीन स्तर हैं। **कथन** में प्रत्येक अक्षर किसी न किसी सुर के साथ बोला जाता है। जिस स्थल पर कोई सम, उन्नायक, अवनायक या निम्न उन्नायक आदि आन्तसुर होगा, वह स्थल हमारे कथन के उस खण्ड का सूचक होगा, जिसे साधारण भाषा में हम **वाक्य** कहते हैं। यह आन्तसुर पूर्ववर्ती सुरों के साथ मिलकर **काकु पद्धित** का निर्माण करता है। काकु पद्धति द्वारा खण्डीय ध्वनियों के समान होते हुए भी अर्थ भेद किया जा सकता है। नीचे दिये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा।

(1) मौ^{2}जी^{2} →	वह कौन है? का उत्तर है। अन्तिम सुर^2 सम ही रहता है।
(2) मौ^{2}जी^{3} ↑	यह इस बात पर सन्देह प्रकट करता है कि वह सचमुच मौजी है। यहां अन्तिम सुर^3 उच्चतर हो गया है।
(3) मौ^{2}जी^{2}→	अच्छा यह मौजी है। यहां अन्तिम सुर पहले ^{2} से नीचे स्तर पर गिरता है और फिर ऊपर उठता है।
(4) मौ^{2}जी^{3} ↓	दूर से बुलाने में। यहां अन्तिम सुर ^{3} एकदम नीचे गिरता है।
(5) मौ^{3}जी^{1} ↓	आज्ञा के अर्थ में। अन्तिम सुर ^{1} पहले ही नीचा है। यह बिल्कुल नष्ट-सा हो जाता है।

आन्तसुर वाक्यों का परिसीमन करता है। यह हम ऊपर कह चुके हैं। जा^{3} ओ^1 मैं^{2} आ^{2}ता^{2} हूं^{2}। इस कथन में सुर ^{1} के बाद उसका शनैः-शनैः विनष्ट हो जाना एक वाक्य की समाप्ति का सूचक है और अन्तिम सुर ^{2} का सम रहना दूसरे वाक्य की समाप्ति का। काकु के अन्त में आने वाले आन्तसुरों की सहायता से हम अपने कथन को वाक्यों में विभाजित करते हैं।

विवृति—विवृति दूसरे स्वनिमों से भिन्न है। इनका अपना कोई ध्वन्यात्मक रूप नहीं होता। ये कथन में विराम के रूप में महसूस होते हैं। द्रुतवृत्ति में तो प्रायः इनका अस्तित्व ही मिट जाता है। साधारण वृत्ति में इनका प्रभाव आगे-पीछे आने वाली ध्वनियों पर पड़ता है। अतः कथन में विवृति का अनुमान मुख्यतः दो प्रकार से होता है। एक भाषण प्रवाह में विराम की अनुभूति से; दूसरे, आगे-पीछे आने वाली ध्वनियों के गुण में अन्तर से।

1. **आन्त वृत्ति**—इसका ज्ञान आन्तसुर से लगता है। सुर का सम रहना, उच्चतर होना या क्रमशः या एकदम नीचे गिरना, इसके द्योतक हैं। उदाहरण ऊपर आन्तसुर के अन्तर्गत दिए जा चुके हैं।

2. **कोमा वृत्ति**—इससे पूर्व आने वाली ध्वनि दीर्घ हो जाती है। यथा दीवे, तलैं धर्‌य दे=दीपों को नीचे रख दो, में दीवे का ए दीर्घ हो जाता है। दीवे तलैं, धर्‌य दे=दीप के नीचे रख दो, में तलैं का ऐ दीर्घ है और

दीवे का ए पहले वाक्य के ए की अपेक्षा ह्रस्व है।

3. **बाह्य विवृत्ति**—इससे पूर्व केवल दीर्घ स्वर आता है। स्वर से पूर्व और बाद साधारण व्यंजन। इस वृत्ति के कारण व्यंजन अर्ध दीर्घ नहीं हो पाते और न ही पहले और बाद में आने वाले स्वनिमों का समीकरण हो सकता है। यह पदों की सीमा का निर्धारण करता है। यथा वा की दुआई=वायु रोग की दवाई। इस वाक्य में वा का आ दीर्घ हो गया है और की के क् की मात्रा अर्ध-दीर्घ नहीं हो पाई जो अन्यथा होती। यह अगले उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। बाकी दुआई=शेष औषधि। इस वाक्य में वा का आ पहले वाक्य के आ की अपेक्षा ह्रस्व है और की का क् अर्ध-मात्रा दीर्घ।

4. **आन्तरिक विवृत्ति**—यह विवृत्ति दो रूपिमों के बीच पाई जाती है। इसकी उपस्थिति में समीकरण तथा अन्य ध्वनि-परिवर्तन नहीं हो पाते। यथा-बीच*आला=जो बीच में है, अन्यथा बिंचाला=मध्य बिन्दु (बीच+आला)। खुद्*दा=खुदता—यहां द्दा दीर्घ द् नहीं है प्रत्युत व्यंजन संतति। बाह्य विवृत्ति से यह इस बात में भिन्न है कि इसमें विराम थोड़ा है और पहले अक्षर का स्वर भी ह्रस्व है। जैसे डूबदा=डूबता : खूब दा=अच्छा दाव, डू का ऊ खू के ऊ की अपेक्षा ह्रस्व है।

बलाघात—पद में अक्षरों पर बलाघात कम या अधिक हो सकता है पर इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता। किसी पद पर जोर देने के लिए अलबत्ता बलाघात का प्रयोग किया जाता है। मैं जांगा=मैं जाऊंगा, वाक्य में यदि सब अक्षरों पर बलाघात की मात्रा सम है तो इसका अर्थ केवल वस्तु स्थिति को प्रकट करना है। यदि मैं पर बल दिया जाए तो अर्थ होगा—"मैं स्वयं जाऊंगा और कोई नहीं जा सकता"। इसी तरह यदि 'जा' पर बल दिया जाता है तो अर्थ होगा "मैं अवश्य जाऊंगा मुझे कोई रोक नहीं सकता।"

रूप तथा पद विचार—पिछले प्रकरण में हम देख चुके हैं कि **'भाषण'** का विश्लेषण ध्वनि या ध्वनिगुणों में किया जा सकता है। इन्हें हम भाषण की लघुतम इकाई मान सकते हैं। इन इकाइयों का अपने में कोई अर्थ नहीं होता। 'कल' में क् अ ल् का अलग-अलग कोई अर्थ नहीं। तीनों मिल कर ही एक विशिष्ट अर्थ को व्यक्त करते हैं। अतः अर्थ की दृष्टि से तो पूरा 'कल' (जो तीन ध्वनियों से अभिव्यक्त होता है) एक इकाई है। स्पष्ट है कि भाषा के ढांचे का परीक्षण एक ही दृष्टि से नहीं प्रत्युत कई दृष्टियों से किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में भाषा के ढांचे का संगठन कई स्तरों पर होता है और प्रत्येक स्तर की इकाइयां अलग-अलग होती हैं। इन स्तरों तथा इकाइयों में परस्पर सम्बन्ध तो हुआ करता है, चूंकि सभी भाषा की ही इकाइयां हैं। 'राम अन्दर तो आए' वाक्य में 'आए' पद में 'आ' और 'ए' दो ध्वनियां हैं और दोनों के अपने-अपने अर्थ भी। इसी तरह 'लिखूं' में दो अर्थवान् इकाइयां हैं—'लिख' और 'ऊं'। अर्थवान् इकाइयों को **रूपिम** कहते हैं। इनका क्लेवर छोटा-बड़ा हो सकता है। इसके अतिरिक्त **रूपिम** के परिस्थिति जन्य भेद भी हुआ करते हैं। यथा घोड़ा, घोड़ा-गाड़ी, घुड़-दौड़ में 'एक पशु विशेष' के अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली ध्वनियां घोड़, घुड़ इन दो रूपों में मिलती हैं। 'तोड़ना', 'टूटना', 'तुड़वाना' में 'छिन्न-भिन्न करने की क्रिया' की अभिव्यक्ति ऊपर के पदों में क्रमशः तोड़, टूट, तुड़ ध्वनि समूहों द्वारा हो रही है। रूपिम के इन विकारों का अध्ययन **सन्धि** के अन्तर्गत किया जाता है।

भाषण में प्रयुक्त होने वाली इकाइयों का एक और भी स्तर है। इसे हम **पद** कह सकते हैं। लिखूं, आए आदि पद हैं। रूपिम की तरह पद भी सार्थक इकाई हैं। पद का और रूपिम का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मोटे तौर पर प्रत्येक पद में कम से कम एक रूपिम अवश्य होता है। हरियाणवी में पदों का ढांचा यों प्रस्तुत किया जा सकता है।

पद : रूढ़
यौगिक

यौगिक : अंग+रूप प्रत्यय

रूप प्रत्यय : विभक्ति
विभक्ति–इतर

अंग : साधारण
समस्त

साधारण : मूल + (प्रत्यय) + (प्रत्यय) + ...

समस्त : मूल + (प्रत्यय) .....+ मूल + (प्रत्यय).....

प्रत्यय : पूर्व-प्रत्यय
पर-प्रत्यय
संयोजक-प्रत्यय,

अंग रचना के कुछ उदाहरण:—

(क) प्रत्यय द्वारा—(1) पर प्रत्यय : घोड़ी=घोड़ — ई ; धोव —ण्य

(2) पूर्व प्रत्यय : अनहोणी —अन्-हो-ण-ई

कुँकरमी =कुँ-करम्-ई ; विँधरमी =विँ-धरम्-ई

(3) संयोजक-प्रत्यय : चटाचट = चट्-आ-चट्,
जूतमजूता = जूत्-अम्-जूत्-आ

(प्रत्ययों का विस्तृत विवरण—'बांगरू का विवरणात्मक व्याकरण में देखिए)

(ख) द्वित्व द्वारा—खट-खट, पट-पट, धुँकड़-पुँकड़

(ग) समास द्वारा—वण-माणस=वन-मानुष

घुँड़-साल=अश्व शाला, घोड़े बांधने का स्थान
ताता-खाणा —ब्राह्मण (अपमान सूचक)

पद भेद—हरियाणवी में पद के **नौ भेद** हो सकते हैं—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, परसर्ग, संयोजक, निपात तथा विस्मयबोधक। इनमें से परसर्ग विभक्तियुक्त संज्ञा आदि के साथ ही आता है, स्वतन्त्र रूप में नहीं। कुछ संयोजक, क्रिया-विशेषण तथा निपात भी अन्य पदों या वाक्यांशों के साथ ही आते हैं। जैसे कदात्य=कभी, निषेधात्मक क्रिया विशेषण के साथ। विस्मय बोधक पद का सम्बन्ध पूरे वाक्य के साथ ही होता है। अरै ! सुँणिए='अरे ! सुनना।' यहां हम इन पद भेदों का संक्षिप्त परिचय देंगे।

संज्ञा—वे पद जिनके साथ विभक्ति-प्रत्यय शून्य, ए, आदि (नीचे देखिए) लगते हैं संज्ञा कहलाते हैं। ये रूढ़ तथा व्युत्पन्न हो सकते हैं। बगड़ = 'आंगन', गाल्— 'गली', पीपल् ='पीपल', आदि रूढ़ (अव्युत्पन्न) हैं। सीलक 'ठण्ड', बैठक =बैठने की क्रिया या स्थान', बढोतरी ='वृद्धि, आदि व्युत्पन्न संज्ञाएं हैं।

सभी प्रकार की संज्ञाओं के साथ विभक्ति प्रत्यय जुड़ते हैं। ये प्रत्यय विभक्ति और वचन की अभिव्यक्ति करते हैं। हरियाणवी में (हिन्दी की भांति) तीन विभक्तियां और दो वचन हैं। इन दो कोटियों को व्यक्त करने के लिए किसी भी संज्ञा के छह रूप चाहिएं। रूपों की दृष्टि से संज्ञाओं की दो श्रेणियां बनती हैं।

(1) **घोड़ा आदि** : इस श्रेणी के अन्तर्गत आकारान्त पुल्लिग संज्ञाएं आती हैं। इनके चार रूप होते हैं। दादा आदि कुछ सम्बन्ध सूचक संज्ञाओं के तीन वैकल्पिक रूप भी होते हैं।

(2) **घर आदि** : इसके अतिरिक्त शेष सभी संज्ञाएं, पुल्लिग, स्त्रीलिंग, इस श्रेणी में सम्मिलित हैं। इनके तीन रूप होते हैं।

रूप रचना—संज्ञा के साथ निम्न विभक्तियां जोड़कर रूप बनाए जाते हैं।

	एक वचन	बहु वचन
प्रथमा	शून्य	ए-शून्य
सामान्य	ए/शून्य	आं
सम्बोधन	ए/शून्य	औ

विभक्ति जुड़ने पर अंग में कुछ संधि परिवर्तन होते हैं। इ, ए, आ, से अन्त होने वाले अंगों और 'आं औं' विभक्ति के बीच 'य्' आता है। साधारणत: आकारान्त भिन्न पदों में 'औं' से पूर्व 'य्' का लोप हो जाता है। स्वर विभक्तियों से पूर्व घोड़ा-आदि गण के 'आ' का लोप हो जाता है।

अंग की दीर्घ 'ई, ऊ' विभक्ति के स्वर से पूर्व ह्रस्व हो जाते हैं कुछ उदाहरण :—

घोड़ी-आं →घोड़ियां

माल़ा-आं →माल़ायां

घोड़ा-आं—घोड़्यां

नमूने के लिए कुछ साधित रूप नीचे दिए जाते हैं :—

		प्रथमा	सामान्य तिर्यक	सम्बोधन
घोड़ा	: एक वचन	घोड़ा	घोड़े	घोड़े
	: बहु वचन	घोड़े	घोड़्यां	घोड़्यौ
दादा	: एक वचन	दादा	दादा-दादे	दादा-दादे
	: बहु वचन	दादा-दादे	दाद्यां	दाद्यौ
घर	: एक वचन	घर	घर	घर
	: बहु वचन	घर	घरां	घरौ
माल़ा	: एक वचन	माल़ा	माल़ा	माल़ा
	: बहु वचन	माल़ा	माल़ायां	माल़ाओ
माली	: एक वचन	माल़ी	माल़ी	माल़ी
	: बहु वचन	माल़ी	माल़ियां	माल़ियौ

व्यक्ति, गुण, द्रव्य तथा रोग संज्ञाओं के रूप प्राय: बहुवचन में नहीं होते। सूरज, चांद, परमात्मा आदि संज्ञाओं के रूप भी बहुवचन में नहीं होते। 'पसे' =पसीना ; चूँरणे' =छोटे बच्चों का गुदा का एक रोग' आदि बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं।

प्रयोग : प्रथमा विभक्ति के साथ परसर्ग का प्रयोग नहीं होता यह कर्त्ता, कर्म आदि कारक सम्बन्धों को व्यक्त करती है। यथा :—

बाल़क दूध पीवै सै। = बालक दूध पीता है

लक्खी, जाट, हल् वाह्वै सै। = लखी, जाट, हल चला रहा है।

रामू तै वण-माणस सै। = रामू तो जंगली है।

औह गां कै लठ मारैगा = वह गाय को डंडा मारेगा।

सामान्य विभक्ति के साथ परसग का प्रयोग होता है। उसके अनुप्रयोग से यह नाना कारक सम्बन्धों को व्यक्त करती है। जैसे :

राम कुत्ते नै पीटै सै = राम कुत्ते को मारता है।

अरै! मंगते नै कोए टूक देद्यो। = अरे! भिखारी को कोई टुकड़ा दे देना।

इस छोहरट कै किसनै मार्‌या? = इस लड़के को किसने पीटा है?

इसनै लठकै घड़ूंगा। = इसे लाठी से पीटूंगा।

सामान्य विभक्ति (एक वचन)—यह कहीं-कहीं समास से पूर्व पद में तथा प्रत्यय से पूर्व भी आती है। जैसे गाडे-लुहार='गाड़ी में घूमते रहने वाले लुहार'; घोड़े-आला =घोड़े वाला, आदि।

सम्बोधन का प्रयोग उस संज्ञा के साथ किया जाता है, जिसे सीधा सम्बोधित किया जाता है। यथा—

रै पड्ढणिए। म्हारी बात सुंणिए। = अरे पढ़ने वाले! हमारी बात सुनना।'

छोह्‌र्‌यो। आल् मत करो। = 'लड़को! शरारत मत करो।'

सर्वनाम—वाक्यों में संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले पद को सर्वनाम कहते हैं। इन के रूप भी संज्ञा की तरह ही होते हैं। इनमें सम्बोधन के रूप नहीं होते। अंग और प्रत्यय घुल-मिल गये हैं। दोनों के परिस्थिति जन्य भेद अनेक हैं। नमूने के लिए कुछ सर्वनामों के रूप नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं :—

		एक वचन	द्वि वचन
मैं	: प्रथमा	मैं	हाम/हम
	: सामान्य	मत	हाम/हम
तं	: प्रथमा	तौं/तूं	तम
	: सामान्य	तत	तम
यौह	: प्रथमा	यौह	येह
	: सामान्य	इस	इन
औह	: प्रथमा	औह	वैह
	: सामान्य	उस	उन
कूण	: प्रथमा	कूण	कूण
	: सामान्य	किस	किन
जो	: प्रथमा	जो	जो
	: सामान्य	जिस	जिन

'यौह=यह', 'औह=वह,' के प्रथमा एक वचन में 'याह' और 'वाह' स्त्रीलिंग रूप भी होते हैं। शेष रूपों में पुलिंग तथा स्त्रीलिंग का भेद नहीं पाया जाता। के=क्या, कोए=कोई, सो=वह, आप=स्वयं तथा आप=आप के रूप नहीं होते। कई=कुछ, विशेषण की तरह व्यवहृत होता है और संज्ञा की भांति ही रूप चलते हैं। यथा, कइयां नै मार्‌या होगा='कई जनों ने पीटा होगा।'

परसर्ग के संसर्ग से सामान्य विभक्ति के रूपों में बहुत विकार आ जाता है और परसर्ग अंग के साथ पूर्णतया संश्लिष्ट हो जाता है। यथा—

मत+नैं →मनैं–मुझे ; तत—नैं →तन्नैं= तुझे ; मत+का →मेरा ; तत+का →तेरा ; हम+का → म्हारा—हमारा ; तम+का→थारा, इत्यादि।

किस, जिस आदि के और भी छोटे खण्ड हो सकते हैं। किस=क् इ स्—यह इन तीन रूपिमों से सिद्ध होता है। प्रत्येक का अपना अर्थ है ; क्—प्रश्नार्थ, इ—निकटार्थ, स्—द्वितीया एक वचन का प्रत्यय।

विशेषण :—विशेषण का लक्षण वितरण की दृष्टि से किया जा रहा है। जो पद '–संज्ञा—→—संज्ञा' के ढांचे में प्रयुक्त हो सके वह विशेषण है। यथा, राम **सुथरा** →**सुथरा** राम—'सुन्दर राम'। इसी तरह कामल्य=बढ़िया, आच्छा= अच्छा, आदि भी विशेषण ठहरते हैं।

कुछ विशेषणों के पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग सूचक जोड़े मिलते हैं, यथा मोटा, मोटी, आछा, आछी, आदि। पुल्लिग का प्रथमा बहुवचन तथा सामान्य दोनों वचनों में एकारान्त रूप होता है। जैसे 'काला' से काले, काले घोड़े, काले घोड़े लें ; काले घोड़यां मैं—काले घोड़ों पर। स्त्रीलिंग में रूप परिवर्तन नहीं होता। यथा काली घोड़ी, काली घोड़ियां का—काली घोड़ियों का।

विशेषण के भेद :—वितरण के आधार पर विशेषणों के चार भेद हो सकते हैं। औह मेरा एक काला घोड़ा सै= 'वह मेरा एक काला घोड़ा है', वाक्य में औह, मेरा, एक काला चार विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। संज्ञा से पूर्व स्थान पर आने वाले विशेषण को **गुणवाचक** कह सकते हैं। इनकी संख्या सब से अधिक है। इसके अन्तर्गत चालणा=तेज ; छट्टू=चुना हुआ, डरपोक, आदि आते हैं। द्वितीय स्थान पर आने वाले को **संख्यावाचक** कह सकते हैं। इन में संख्या तथा थोड़ा, घणा=अधिक, कुँछ्य=कुछ ; छ्यकमां=पर्याप्त, भतेरा=काफ़ी, आदि सम्मिलित हैं। तीसरे स्थान पर आने वाले विशेषण **सम्बन्ध-वाचक** हैं। ये सर्वनाम से बने हुए हैं। यथा—मेरा, तेरा, थारा, आपणा, आदि। इनकी संख्या नियत ही है। चौथे स्थान पर आने वाले **निर्देशवाचक** है। ये, औह=वह तथा यौह=यह के रूपों तक ही सीमित हैं।

व्युत्पत्ति :—विशेषण रूढ़ तथा व्युत्पन्न दो प्रकार के हैं। व्युत्पन्न विशेषण संज्ञा, धातु तथा अन्य विशेषणों से प्रत्यय लगाने से भी बनते हैं। जैसे—अड़ियल←अड़–इअल (धातु) ; मूंछल्य →मूंछ-ल्य=लम्बी मूंछों वाला ; विँकाऊ←विका–ऊ ; सुँखीन←सुख–ईन=सुखी, इत्यादि।

क्रिया :—हरियाणावी में क्रियापद का लक्षण रूप-रचना की दृष्टि से किया जा सकता है। ऊं, आं, आदि रूप–प्रत्ययान्त शब्द **क्रिया पद** कहे जा सकते हैं। प्रत्यय से पूर्व आने वाले अंग को **धातु** कहते हैं। रचना की दृष्टि से धातु सरल तथा समस्त हो सकते हैं।

सरल धातु :—सरल धातु दो प्रकार के होते हैं—(1) मूल तथा (2) व्युत्पन्न। मूल धातु तथा नाम के साथ निम्न प्रत्यय लगाकर व्युत्पन्न धातु बनाये जाते हैं।

(क) **शून्य**—प्राय: किसी भी सकर्मक धातु के आगे यह प्रत्यय **कर्म कर्तरि** अर्थ में लगता है। यथा–काट+O→ कट, सीम+O→सिंम→सिलना ; पीस+O→पिँस ; धो+O→धू, आदि।

(ख) **आ** : यह प्रत्यय लगभग सभी मूल धातुओं के साथ लगता है। आ, सक, आदि अपवाद हैं। व्युत्पन्न धातु **प्रेरणार्थक** या केवल सकर्मक होता है। यथा—मोड़+आ →मुँड़ा='मुड़ना'; सूक+आ →सुँका—'सुखा'; खा—आ →खुआ='खिला', आदि।

(ग) **वा** :—यह प्रत्यय मूल धातु के साथ लगता है। कुछ इसके अपवाद हैं। यह भी प्रेरणा अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा—धणवा ; दिँखवा ; कटवा ; सुँणवा, आदि।

(घ) **ई** :—यह प्रत्यय ऊपर दिये गये मूल तथा प्रेरणार्थक धातु के आगे कर्मवाच्य अर्थ में आता है। यथा—काट+ई→काटी=काटा जाना ; पीट+ई→पीटी=पीटा जाना ; डबो—ई→डबोई=डुबाया जाना, इत्यादि।

(ङ) **श्रा** :--यह प्रत्यय नाम पदों के आगे जुड़ता है। नाम धातु सकर्मक तथा अकर्मक होते हैं। यथा—ठोकर+ आ→ठुकरा (सकर्मक)=ठोकर लगाना, पाथर+आ→पथरा (अकर्मक)=पत्थर की भांति जड़ व स्थिर होना; लाकड़+ आ→लकड़ा='लकड़ी की तरह कठिन होना'।

(च) शून्य :—कुछ संज्ञाओं के साथ यह प्रत्यय जोड़ा जाता है। इससे पूर्व आने वाले अंग में कोई विकार नहीं आता। जैसे गोड+O→गोड='घुटने के नीचे रगड़ देना'; तोप+O→तोप 'तोप के सामने बांध कर उड़ा देना', आदि।

नाम धातुओं से प्राय: कर्मकर्तरि, प्रेरणार्थक आदि धातु व्युत्पन्न नहीं होते।

समस्त धातु :—समस्त धातु भी दो प्रकार के हैं। धातु (मूल या व्युत्पन्न)+धातु (डाल, ले, दे आदि)। जैसे—**काट्य गिरणा**=काट डालना; राख्य छोड़णा=**रख छोड़ना। रो पड़; खा जाणा**='खा जाना'। **दूसरा**, नाम+धातु (कर, देख, मार आदि); जैसे याद करणा, ध्यान लाणा, बाट देखणा=प्रतीक्षा करना; आंख्य मारणा='इशारा करना', आदि।

धातु के या नाम के साथ प्रत्यय जुड़ने पर अनेक सन्धि विकार होते हैं। जैसे उँकास—ऊपर को उठाना से ऊकस (अकर्मक) तथा उँकसवा=प्रेरणार्थक में उँ→ऊँ तथा आ→अ। विस्तारभय से इनका विवरण हम यहां नहीं दे रहे।

(क) **रूप-प्रत्यय तथा साधित रूप** :—रूप प्रत्यय सीधे धातु के साथ जुड़ते हैं। ये प्रत्यय पुरुष, वचन, काल, विधि आदि व्याकरणिक कोटियों को व्यक्त करते हैं। हरियाणवी में **पुरुष** तीन हैं—उत्तम, मध्यम तथा प्रथम। इनका सम्बन्ध क्रमश: मैं, तौं तथा यौह आदि सर्वनामों से है। **वचन** दो हैं—एक वचन, द्वि वचन। **काल** दो—वर्तमान, भूत (केवल सत्तार्थक स-धातु से ही काल बोधक रूप बनते हैं)। **विधि**—चार: अनुज्ञा, प्रार्थना, आज्ञा, विधि। **वाच्य** तीन हैं—कर्तृ, कर्म तथा कर्म कर्तृ। पर ये रूप-प्रत्यय से लक्षित नहीं होते। कर्म वाच्य तथा कर्म कर्तृ धातु के साथ क्रमश: ई और शून्य प्रत्यय लगा कर बनाये जाते हैं। धातु केवल कर्तृ वाच्य की अभिव्यक्ति करता है। रूप-प्रत्यय तीनों वाच्यों में समान हैं। इन से जो व्याकरणिक कोटियां अभिव्यक्त होती हैं, उनकी चर्चा ऊपर की गई है।

ये व्याकरणिक कोटियां अनिवार्य हैं। धातु से जुड़ने वाले रूप-प्रत्यय से इनकी अभिव्यक्ति होगी ही। इनके अतिरिक्त अन्य वैकल्पिक कोटियां भी हैं, जिनकी अभिव्यक्ति अन्य प्रकार से होती हैं। धातु से जुड़ने वाले प्रत्ययों की तालिका, उससे अभिव्यक्त कोटियां तथा काट् धातु के साधित रूप नीचे दिये जाते हैं।

			एक वचन	बहुवचन	एक वचन	बहुवचन
(1)	अनुज्ञा	उ०	ऊं	आं	काटूं	काटां
		म०	ऐ	औ	का[illegible]	काटौ
		प्र०	ऐ	ऐं	काटै	काटैं
(2)	आज्ञा	म०	य	औ	काट्य	काटौ
(3)	प्रार्थना	म०	इए	इऔ	काटिए	काटिऔ
(4)	विधि	म०	णा		काटणा	

प्रयोग :- अनुज्ञा का प्रयोग वर्तमान या निकट भविष्य में अनुमति, इच्छा, सम्भावना आदेश, शक्यार्थ आदि की अभिव्यक्ति के लिये किया जाता है। भविष्यत् काल वाचक निषेधात्मक वाक्य में भी अनुज्ञा का ही प्रयोग होता है। इसके रूप वर्तमान और निकट भविष्य की अभिव्यक्ति भी करते हैं। कुछ उदाहरण—

तै मैं चालूं ? = 'तो मैं चलूं ?'

कदे हाम ना पौंहचां = 'हो सकता है हम न पहुंचें।'

भगवान करै थारै सुधां बेटै बहू आवै = 'भगवान करे, तुम्हारे घर बेटे-सहित बहू आए'

ओह् कीन्या आवै = 'वह नहीं आयेगा'

दो म्हैस्यां का दूध पीऊं, खां चिंण्यां की टाट
बुला ल्या आपणे मामा साले नै मारूं द्यौल की साथ्थ ।।

='मैं अकेला दो भैंसों का दूध पीता हूं और चने की टाट खाता हूं । अपने उस दुष्ट मामा को बुला लीजिये । मैं उसे मेंड के साथ भिड़ा दूंगा ।'

आज्ञा :—इसका प्रयोग केवल मध्यम पुरुष में होता है । वचन भेद पाया जाता है । वर्तमानकाल में आज्ञा, भर्त्सना, प्रार्थना आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है । यथा :—

जा, आपणा काम कर्‌य । = जाओ, अपना काम करो ।'

उसनै कुंछ्य मत्य कहो । = उसे कुछ मत कहो ।

चाल्य । बेटा, गाडी जौड़्य = चलो, बेटा गाड़ी जोत ।

प्रार्थना : आज्ञा की भांति इसका प्रयोग भी मध्यम पुरुष (दोनों वचनों में) होता है । शिष्ट आज्ञा तथा प्रार्थना के अतिरिक्त इससे भविष्यत् काल भी द्योतित होता है ।

एक लोटा पाणी पकड़ाइये रै । = एक लौटा पानी देना भई ।

बेटा ! आड़ैए रहिये, कित्तै मत्य जाइये । = बेटा यहीं रहना, कहीं मत जाना ।

कूत्ते कै ना मारिये, पाड़्य लेगा । = कुत्ते को न मारना, काट लेगा ।

किस्य सोइयो । = सावधानी के साथ सोना ।

विधि :—यह आज्ञा, प्रार्थना आदि अर्थ में आता है तथा भविष्यत्काल को बोध कराता है । इसका प्रयोग अधिक नहीं मिलता जैसे :—

आन्दे हाणां आपणे मामा तैं जरूर मिलणा और किसै तैं मिलिए चाहे ना ।='आते समय अपने मामा से अवश्य मिलना चाहे और किसी से मिलना या नहीं ।'

राम राम जपणा पराया माल गटणा । = राम राम जपना और पराया माल हड़प करना ।

काह्ल्य मिलणा सारी बात सुणाऊंगा । = कल मिलना सब बातें बताऊंगा ।

रीफश्णा मत्य, बोल बाला बैठ्या रहिये । = 'शेखी में मत आना, चुपचाप बैठे रहना ।'

कृदन्त : य और द दो कृत् प्रत्यय हैं जो धातु के साथ जोड़े जाते हैं । ये क्रिया पद के तौर पर भी प्रयुक्त होते हैं । इन्हें क्रमश: पूर्ण तथा अपूर्ण कृत् कह सकते हैं । इन दोनों के साथ लिंग-वाचक रूप-प्रत्यय जुड़ते हैं । लिंग और वचन में इनकी अन्विति कर्ता या कर्म के साथ होती है । पूर्ण कृदन्त का प्रयोग साधारणतया भूतकाल के अर्थ में होता है । सन्दर्भ अनुसार अन्य कालों को भी व्यक्त करता है । इसी तरह अपूर्ण कृत् का प्रयोग प्रधानतया सम्भाव्य भूत के अर्थ में है । निषेधात्मक या प्रश्नबोधक वाक्य में, जिसका उत्तर नकारात्मक हो, यह वर्तमान काल का द्योतक होता है । सन्दर्भ विशेष में भविष्यत् का बोध भी कराता है । कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

पूर्ण कृत् :

याह् म्हैंस्या कूण ल्याया ? = यह भैंस कौन लाया ?

देख्य ! ओह् के आया । = देख ! वह क्या आता है ।

चाल्य ! मैं श्रोह् श्राया ।	=	चलो, मैं श्रभी श्राता हूं
जै बोल्या तै थप्पड़ मारूंगा	=	यदि बोले तो चपेटा मारूंगा ।
श्रोह् श्राया ना श्रर हाम चाल्ये ना	=	उसके श्राते ही हम तत्काल चल देंगे ।

श्रपूर्ण कृत:

जै थारै धोरै पीसे हुंन्दे तै तम घोड़ा जरूर ल्यन्दे	=	यदि तुम्हारे पास पैसे होते तो तुम घोड़ा श्रवश्य खरीदते ।
वाह् कौन्या सुणदी	=	वह नहीं सुनती ।
श्राड़ै राम बैठदा के ?	=	यहां राम बैठता क्या ? श्रर्थात् नहीं बठता ।
जै परसं जलसा हुंन्दा तै मैं बी चालदा	=	'यदि परसों जलसा होता तो मैं भी चलता । (भविष्यत्)

कर्मवाच्य : ऊपर कह चुके हैं कि मूल धातु तथा प्रेरणार्थक धातु के साथ 'ई' प्रत्यय लगा कर कर्म वाच्य बोधक धातु निष्पन्न होता है । इसके साथ श्रनुज्ञा के प्रत्यय लगते हैं । पर उत्तम पुरुष का प्रयोग बहुत कम होता है । कर्म वाच्य रूपों का प्रयोग सहायक क्रिया 'स'––तथा क्रिया सहायक 'ग' या 'हे' के साथ पाया जाता है ? हां, चाही '(चाह-ई) के रूपों का स्वतन्त्र प्रयोग भी मिलता है । इसके कर्ता में सामान्य विभक्ति के साथ 'नै' पर सर्ग का प्रयोग होता है । श्रन्य धातुश्रों के कर्म वाच्य के योग में कर्त्ता का लोप हो जाता है ।

कुछ उदाहरण

राम नै एक घोड़ा चाहियै ।	..	राम को एक घोड़ा चाहिये ।
देस नै तै तम चाहियो ।	..	देश को तो तुम्हारी श्रावश्यकता है ।
तम पीटियो गे।	..	तुम पीटे जाश्रोगे ।
इस देस में तै पाथर बी पूजियै सैं ।	..	इस देश में तो पत्थर भी पूजे जाते हैं ।
इस ह सारे के सारे पकड़ियें हैं जै थोड़ी सी हाण श्रौर ऊड़ै रुक्य यां हैं ।		वे सब के सब पकड़े जाते यदि वे वहां थोड़ी देर श्रौर रुक जाते ।

काल रचना :––ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि क्रिया के रूप प्रधानतया काल निरपेक्ष हैं । कुछ रूपों का प्रयोग भले ही यत्र-तत्र कालवाचक हो । काल की श्रभिव्यक्ति निम्नलिखित सहायक क्रिया तथा क्रिया सहायक द्वारा की जाती है ।

सहायक क्रिया : (1) स–धातु : स्वतन्त्र क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त होता है तथा सहायक क्रिया के तौर पर भी । इसके रूप श्रनुज्ञा तथा पूर्ण कृत् में होते हैं जो कि निम्न हैं :––

श्रनुज्ञा

		एक वचन	बहुवचन
उ०	..	सं	सां
म०	.	सै	सौ
प्र०	..	सै	सैं

पूर्णकृत् में लिंग वचन बोधक प्रत्ययों के साथ इसके केवल तीन रूप––था थे (पु०) तथा थी (स्त्री० एकवचन तथा बहुवचन) हैं ।

(2) हो—'होना' भी सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होता है। स्वतन्त्र धातु के तौर पर इसके सभी रूप पाये जाते हैं। आज्ञा में प्रार्थना या विधि के रूपों का ही प्रयोग होता है।

क्रिया-सहायक : हरियाणवी में निम्नलिखित केवल दो पद क्रिया सहायक हैं। ये स्वतन्त्र क्रिया के तौर पर प्रयुक्त नहीं होते।

(1) ग—इसके साथ लिंग वचन बोधक प्रत्यय जुड़ते हैं।

(2) हे—यह अविकृत रूप में प्रयुक्त होता है।

वर्तमान काल : स–धातु के अनुज्ञा के रूप वर्तमान काल के वाचक हैं। ये स्वतन्त्र रूप से भी प्रयुक्त होते हैं और अन्य धातुओं के अनुज्ञा, विधि, कर्म वाच्य और पूर्णकृत् रूपों के साथ सहायक क्रिया के तौर पर भी। (हिन्दी में अपूर्ण कृत् के साथ भी ह-सहायक क्रिया के तौर पर प्रयोग में आता है—जैसे पढ़ता है, आदि। हरियाणवी में ऐसा नहीं है।) दोनों पदों में पुरुष, लिंग तथा वचन की अन्विति होनी आवश्यक है। (वस्तुतः सहायक क्रिया के विधि रूप लिंग की अभिव्यक्ति नहीं करते केवल पूर्ण कृत् के रूप ही लिंग-भेद व्यक्त करते हैं।) ये संयुक्त रूप वर्तमान काल के भिन्न-भिन्न पक्ष तथा प्रकार व्यक्त करते हैं। उदाहरण—

घोड़ा खेत में सै। .. घोड़ा खेत में है।

मैं आड़ै ए सूं। .. मैं यहीं हूं।

मैं कुंड़ता धोंऊ सूं। .. मैं कुर्ता धो रहा हूं।

मन्नै किंताब पढणी सै। .. मुझे पुस्तक पढ़नी है।

मोती नै बुल्हद बेच्चे सैं। .. मोती ने बैल बेचे हैं।

आज काल्ह तै ईंख नुंलाइये सै। .. आजकल तो ईख की गोडी की जा रही है।

ये कोटड़ी मैं कूण पीटियें सैं? .. कमरे में किसे पीटा जा रहा है?

भूतकाल : स–धातु का पूर्ण कृत् रूप, थ—केवल भूतकाल का वाचक है। अन्य धातुओं के अनुज्ञा, विधि, कर्मवाच्य तथा पूर्णकृत् रूप इसके योग से भूतकाल का बोध कराते हैं। जैसे—

ये कूण थे? .. ये कौन थे?

मैं तै तड़क्यां का पिरस्य में था। .. मैं तो प्रातःकाल से चौपाल में था।

मन्नै एक चिट्ठी लिखवाणी थी। .. मुझे एक चिट्ठी लिखवानी थी।

पहल्यम कलकत्ते में रोज हजारां गां काटियें थी। .. पहले कलकत्ते में रोजाना हजारों गायें मारी जाती थीं।

बालक नै दूध पीया था। .. बालक ने दूध पिया था।

तम परसों कित गये थे? .. तुम परसों कहां गये थे?

संभाव्य भूत : क्रिया-सहायक 'हे' के अनुयोग से अनुज्ञा तथा कर्मवाच्य धातु के रूप सम्भाव्य भूत के बोधक होते हैं। उदाहरण—

हाम थारी साथ्य चालां हे। .. 'हम तुम्हारे साथ चलते'।

वाह के आवै हे। .. 'वह क्या आती?'

मैं भला उसकी साथ्य क्यूं लड़ूं हे। .. मैं भला उसके साथ क्यों लड़ता।

ग्रौह् जरूर पकड़िये हे। .. वह अवश्य पकड़ा जाता।

तम पीटियो हे ; भाज्य आये। .. तुम पीटे जाते ; भाग आए।

भविष्यत् काल : भविष्यत् काल की अभिव्यक्ति के लिये क्रिया-सहायक ग–का अनुज्ञा तथा कर्मवाच्य धातु के रूपों के साथ प्रयोग किया जाता है। निषेधात्मक वाक्य में ग– का लोप हो जाता है। जैसे—

हाम बी मेले मैं चालांगें। .. हम भी मेले में चलेंगे।

तौं कित ठहरै गा ? .. तूं कहां ठहरेगा ?

रै छोहरे। तिरी आंगल्ी कटैगी .. अरे लड़के ! तेरी उंगली कट जायेगी।

वैह् डंडियेंगे। .. उन पर दण्ड पड़ेगा।

येह् सारे पेड़ काटियेंगे। .. ये सारे पेड़ काटे जायेंगे।

ग्रोह् आड़े तैं कोन्या हिंम्गे। .. यह यहां से नहीं हिलेगा।

तन्ने कोए ना छेड़ै; आ क्या न। .. तुझे कोई कुछ नहीं कहेगा। आ क्यों नहीं जाता।

सामान्य सम्भावना : विधि तथा कृत् रूपों के साथ सहायक क्रिया हो—'होना' का प्रयोग सम्भावना में पाया जाता है। हो– का अनुप्रयोग भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान, सभी कालों का बोध कराता है। हो–का स्वतन्त्र प्रयोग भी होता है। इसके साथ क्रिया-सहायक ग—का वैकल्पिक प्रयोग भी पाया जाता है। ग–कहीं-कहीं निश्चयात्मकता को प्रकट करता है। कुछ उदाहरण—

काल्ह् ग्र मोती म्हारै घरां आया हो (गा)। .. हो सकता है कि मोती कल हमारे घर आया हो (गा)।

पुछ्य ले, के भरा ग्रौह् बी चालदा हो (गा)। .. पूछ लिजिये शायद वह भी चलता हो (गा)।

के ब्यौरा हाम सब्बै नै जाणा हो (गा)। .. क्या पता हम सभी को जाना हो (गा)

देख्य आ ! कदे घरां ए हो। .. देख आग्रो शायद घर ही हो।

कित जा सै ; घरां ए होगा। .. वह कहां जाता है ; घर पर ही होगा।

वैकल्पिक कोटियां : (क) इच्छा, सातत्य, विवशता, सामर्थ्य, वाच्य (कर्म व भाव) आदि व्याकरणिक कोटियों की अभिव्यक्ति के लिये (विशिष्ट प्रत्यय-युक्त या प्रत्यय-विहीन) धातु के साथ चाह, रह, पड़, सक, जा आदि का प्रयोग किया जाता है। एक वाक्य में एक से अधिक कोटियों की अभिव्यक्ति भी सम्भव है। ये प्रयोग भारतीय भाषाओं (आर्य तथा द्रविड़) में प्रचुरता से पाये जाते हैं। अभी तक इनका संतोषजनक विवरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। इस विषय में विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है। यहां केवल कुछ उदाहरण-मात्र दिये जा रहे हैं।

मैं बी कुछ्य कहणा चाहूं सूं। = मैं भी कुछ कहना चाहता हूं।

आड़े तैं तै भाजणा पड़ैगा। = यहां से तो भागना पड़ेगा।

मैं के उसनै किमें कह सकूं सूं। = मैं क्या उसको कुछ कह सकता हूं।

इतणा मोटा लाकड़ के ठाया जा सै। = इतना मोटा लक्कड़ क्या उठाया जा सकता है।

इस खाट पै कोन्या सोया जा। = इस खाट पर नहीं सोया जा सकता।

इतणी कड़वी दुआइ के खाई जा सकै सै। = इतनी कड़वी दवाई क्या खाई जा सकती है।

(ख) क्रिया का आरम्भ, आकस्मिकता, निरन्तरता, पूर्णता, अनुमति आदि भावों को प्रकट करने के लिये संयुक्त क्रिया का प्रयोग किया जाता है। जैसे—

थोड़ी सी हाणंपाछै सोणंलागां गे। = 'थोड़ी देर के बाद सोने लगेंगे।'

आपणी मा नै देखदें ए रो पड्या। = 'अपनी मां को देखते ही रोने लग गया।'

तौं हालवे मांडे उड़ाएं जा, तन्नै दूसर्यां की के फिंकर सै। = 'तू मौज उड़ाता रह, तुझे दूसरों की क्या चिन्ता है।'

चिड़िया उड़्य ग्यी। .. 'चिड़िया उड़ गई।'

सब नै ए आण दे। .. 'सब को ही आने दो।'

तौं बी दो लाडू गल्क ले। .. 'तू भी दो लड्डू हड़प ले।'

ऊपर दिये विवरण में हमने 'रो पड़णा' आदि को संयुक्त क्रिया कहा है और इन्हें 'खा सकणा' आदि से भिन्न माना है। क्यों? इस पर यहां कोई प्रकाश नहीं डाला। इसके लिये लेखक की बांगरू क्रियारूप तथा धातुपाठ पुस्तक (आगामी) देखिये।

क्रिया विशेषण : वाक्य में क्रिया, विशेषण या अन्य क्रिया विशेषण से पूर्व आने वाले पद को क्रिया विशेषण कहते हैं। जैसे, खूब मोटा, खूब जाणूं सूं = अच्छी तरह जानता हूं'; तथा खूब दाहूं जाणूं सूं = 'बहुत अच्छी तरह जानता हूं', में खूब, दाहूं क्रिया विशेषण है। कुछ पद विशेषण भी होते हैं और क्रिया-विशेषण भी। प्रयोग से पता चलेगा कि वे किसी वाक्य में विशेषण हैं या क्रिया-विशेषण। जैसे—भौत माणस = 'बहुत मनुष्य'; भौत सौवें सै—'बहुत सोता है', में भौत क्रमशः विशेषण तथा क्रिया-विशेषण है।

क्रिया-विशेषण रूढ़ तथा यौगिक होते हैं। यौगिक क्रिया विशेषण धातु, संज्ञा तथा विशेषण के साथ प्रत्यय लगा कर बनाये जाते हैं। यथा :—छिपाण्य = छिपने को; काट्यें = काटने से; घरां = घर पर; उँतराही = उत्तर की ओर से; बारणै = दरवाजे पर; पाह्यां = पैदल; कड़ह्यां = कमर के बल; दूसर्यें = दूसरी बार; ठाड्यूं = जोर से, आदि।

परसर्ग : विभक्तियुक्त पद के बाद आने वाले पद को परसर्ग कहते हैं। यथा घोड़े नै, घर पै, कूत्यां कै = कुत्तों को। एक से अधिक परसर्ग का उपयोग भी पाया जाता है—यथा = छात्य पर तैं = छत पर से; बालकां तांही नै = बच्चों सहित (बच्चों तक को)।

कुछ परसर्ग यौगिक भी हैं। सुधां, सुधे, 'साथ' से सामान्य बहुवचन रूप है। इसी तरह तलै = नीचे; धोरै = निकट; भीतर्य = अन्दर आदि क्रमशः तल, धोर तथा भीतर संज्ञाओं से प्रत्यय लगा कर बनाये है। ये क्रिया विशेषण हैं पर यहां परसर्ग के तौर पर प्रयुक्त हुए हैं।

संयोजक : एक प्रकार के दो पदों, वाक्यों या वाक्यांशों को मिलाने वाले पदों को संयोजक कहते हैं। जैसे:—पर = लेकिन, अर, = और, = कै = या, ना = न, बिल्कि = बल्कि आदि। इनमें कुछ यौगिक भी हैं। जैसे—जाणूं = मानो ('जाण = जानना से अनुज्ञा उत्तम पुरुष एक वचन का रूप) चाहे = या, भले ही। जै = यदि, तै = तो आदि सर्वनाम के साथ प्रत्यय लगा कर बनते हैं।

संयोजकों के प्रयोग के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

मैं अर राम = मैं और राम; दूध अर पाणी = दूध और पानी; तौं चाल्य चाहे बैठ्य = तू बैठ चाहे चल; जाऊं ना जाण यूं = न जाऊं न जाने दूं; सब चाल्यें जां पर मैं आड़े ए रहूंगा = सब चले जायें पर मैं यहीं रहूंगा।

निपात : वाक्य के किसी भी अंश पर बल दिया जा सकता है। यह आघात या पद क्रम को बदल कर सम्पन्न हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसे अधिक सशक्त बनाने के लिये कुछ पदों का भी प्रयोग किया जा सकता है। इन्हें हम निपात कहते हैं। ये ए, तै, बी, नैं, के, जो, श्राथ्य, सही, भला, थोड़ा, आदि हैं। इनमें से स्पष्ट ही भला, थोड़ा आदि विशेषण हैं, पर ये निपात के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। वाक्य में इनकी स्थिति निश्चित नहीं होती। कुछ निपातों का प्रयोग दूसरे पदों के साथ निबद्ध है। जैसे— 'श्राथ्य' सदा 'तै' सहित निषेधात्मक क्रिया विशेषण के साथ ही प्रयुक्त होता है। कुछ उदाहरण :— में ए जां गा=केवल मैं ही जाऊंगा, मैं जां ए गा —मैं केवल जाऊंगा (और कुछ नहीं करूंगा); मैं जांगा थोड़ा=मैं कभी नहीं जाऊंगा; राम जा तै भला=राम जाने का साहस तो करे; मैं जां तै श्राथ्य ना=मैं हरगिज़ नहीं जाऊंगा चाहे. . . . ।

विस्मय वाचक : विस्मय वाचक वे पद हैं जो वाक्य की भांति अनुतान से युक्त होते हैं। इन्हें हम एकपदीय वाक्य भी मान सकते हैं। यथा—स्यावास:='साधु साधु' अर्थात जो कुछ आपने किया मैं उसका पूरी तरह अनुमोदन करता हूं, हा !=हाय अर्थात मुझे सुन कर बहुत दुःख हुआ।

कुछ विस्मयसूचक यौगिक भी हैं। जैसे:—दुंर्य (→दूर्य)=अस्वीकृति सूचक; आछा=स्वीकृतिसूचक, भई (←भाई) अरे; पालंगा (पां लागूं)=नमस्ते।

कुछ विस्मय सूचक वक्ता तथा सम्बोधित व्यक्ति के भेद को भी प्रकट करते हैं। उदाहरण के तौर पर 'आहो' सूचित करता है कि वक्ता कोई विवाहित स्त्री है और जिसे बुलाया जा रहा है उसके साथ उसका एक विशेष सामाजिक सम्बन्ध है। इसी तरह 'आहरै' से ध्वनि निकलती है कि बोलने और बुलाये जाने वाले दोनों ही पुरुष हैं। 'एरी' से प्रकट होता है कि सम्बोधित व्यक्ति स्त्री है और बोलने वाला स्त्री या पुरुष है।

वाक्य विचार : भाषा की वास्तविक इकाई तो 'कथन' है जो एक या अधिक वाक्यों का संघटन है। कथन में वाक्यों का परस्पर सम्बन्ध तो होता ही है, जिसके कारण उनमें पारम्पर्य निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक वाक्य का अपना संघटन भी होता है। कथन में आने वाले किसी वाक्य के संघटन को पूर्णतया समझने के लिये बहुधा पूर्व पर वाक्यों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। "आप यहां बैठिये। मैं अभी आता हूं। उतनी देर आप समाचार-पत्र पढ़िये। सामने की मेज पर पड़ा है।" इसे यदि एक संक्षिप्त कथन का नमूना मान लें तो थोड़ा ध्यान देने से स्पष्ट हो जायेगा कि 'उतनी देर आप समाचार पत्र पढ़िये' वाक्य के ढांचे तथा अर्थ को समझने के लिये आवश्यक है कि हमें उस सन्दर्भ का ज्ञान हो, जिसमें इस वाक्य की आवृति हो रही है। अन्यथा हमें 'उतनी देर' का प्रयोग और अर्थ रहस्यमय लगेगा। इसके अतिरिक्त 'पढ़िये' का प्रयोग और अर्थ भी पूरा स्पष्ट नहीं होगा। "सामने मेज पर पड़ा है" वाक्य तो संघटन की दृष्टि से अपूर्ण जंचेगा और अर्थ तो अस्पष्ट ही रहेगा। इन वाक्यों के संघटन तथा अर्थ को समझने के लिये कथन में आने वाले पास-पड़ोस के वाक्यों से कुछ अंशों का अध्याहार करना पड़ता है। इससे प्रत्येक वाक्य एक कथन का ही रूप धारण कर लेता है। फिर उसकी संरचना और अर्थ दोनों ही स्पष्ट हो जाते हैं। अतः वाक्य को भाषा की इकाई मानने वाले विद्वान् भी यह अस्वीकार करते संकोच नहीं करेंगे कि केवल वही वाक्य भाषा की इकाई बनने का अधिकार प्राप्त कर सकेंगे जो पूर्णांग हों। कथन में पूर्णांग वाक्य कोई-कोई होता है; अन्यथा अध्याहार से कुछ अंशों की पूर्ति की जाती है।

भाषा-विदों का यह प्रयास है कि किसी भाषा में अनेक प्रकार के वाक्यों की स्थापना की अपेक्षा यदि वाक्यों की संरचना का एक ही मूलभूत रूप सिद्ध कर दिया जाये तो वाक्यों की व्याख्या में सहज सरलता प्राप्त हो जायेगी। लक्ष्य स्तुत्य है। पर क्या यह संभव होगा कि सभी वाक्यों को एक सांचे में ढला हुआ मान लिया जाये। एक बात तो स्पष्ट ही है कि भाषा में वाक्यों की विविधता वस्तुतः उतनी अनन्त नहीं है जितनी दिखाई देती है। उदाहरण के तौर पर हिन्दी के निम्न वाक्यों का परीक्षण कीजिये—

(1) तोता आम खाता है।
(2) तोता आम नहीं खाता।
(3) तोता क्या खाता है ?
(4) क्या तोता आम खाता है ?
(5) तोता आम क्यों खाता है ?

(6) तोता आम क्यों नहीं खाता ?

(7) क्या तोता आम नहीं खाता ?

(8) आम कौन खाता है ?

(9) तोता क्या करता है ?

(10) तोता क्या नहीं करता ?

प्रत्येक वाक्य संघटकों की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं, पर फिर भी उनमें जो साम्य है—संरचना और अर्थ की दृष्टि से—उससे आंखें नहीं मूंदी जा सकतीं। एक वाक्य दूसरे वाक्य से निकट का सम्बन्ध लिये हुए है। वस्तुत: सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षण करने के उपरान्त ऐसे नियम निर्धारित किये जा सकते हैं, जिनके अनुयोग से इन सभी वाक्यों की निष्पत्ति समान वाक्य-संरचना से हो सकेगी।

वाक्य में प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक पद का दूसरे पदों के साथ सम्बन्ध है। वाक्य को समर्थ पदों की लड़ी कहा जा सकता है। प्राय: वाक्य में प्रत्येक पद का सीधा सम्बन्ध दूसरों पदों से प्रत्यक्ष रूप से कम ही होता है। वाक्य के संघटक पद परस्पर समूहों में बंटे होते हैं और एक पद समूह का सम्बन्ध दूसरे पद समूह से होता है। अन्ततोगत्वा सब पद दो घटकों में बंट जाते हैं। जिसका एक वाक्य बनता है। अत: यदि हम यह मान लें कि वाक्य के दो घटक हैं—संज्ञा वाक्यांश तथा क्रिया वाक्यांश, तो पहले वाक्य में तोता संज्ञा वाक्यांश का स्थानापन्न होगा और आम खाता है क्रिया वाक्यांश का। क्रिया वाक्यांश की व्याख्या होगी–संज्ञावाक्यांश+क्रिया। आम संज्ञा वाक्यांश का प्रतिनिधित्व करेगा और फिर क्रिया की व्याख्या कर्ता की इच्छानुसार 'खा' का वर्तमान कालसूचक रूप होगा। अन्य वाक्यों की सरंचना भी इस मूलभूत वाक्य संरचना में कुछ हेर-फेर करके स्पष्ट की जा सकती है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि किसी भाषा की अनन्त वाक्य राशि एकाध संरचना का ही परिवर्तित रूप है। परिवर्तन के इन नियमों का निर्धारण करने पर वाक्यों का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। 'राम और श्याम चावल खाते हैं' वाक्य 'राम चावल खाता है', 'श्याम चावल खाता है', इन दो वाक्यों का एकीकरण ही तो है। जो शब्द दोनों वाक्यों में समान हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं की गई और 'राम' तथा 'श्याम' दोनों को 'और' से जोड़ कर कर्ता के स्थान पर बैठा दिया गया। क्रिया की अन्विति कर्ता के साथ है अत: क्रिया में बहुवचन आया है। इसी तरह 'यह' साइकल है। मैंने साइकल पचास रुपये में खरीदा था। ये दोनों वाक्य 'यह वही साइकल है, जो मैंने पचास रुपये में खरीदा था' इस एक वाक्य में परिवर्तित हो गये हैं। वाक्यों के रूप में कुछ हेर-फेर किया गया है। पर यह हेर-फेर मन-माना नहीं, कुछ नियमों के अन्तर्गत बद्ध किया जा सकता है। अत: भिन्न-भिन्न वाक्यों की संघटना की व्याख्या के लिये हमें ऐसी मौलिक वाक्य-संघटना की स्थापना करनी होती है, जिससे कुछ नियमों को लागू करके भाषा में प्रयुक्त होने वाले अनन्त वाक्यों की संरचना की व्याख्या की जा सके।

मोटे तौर पर हरियाणवी में निम्न प्रकार के वाक्य (वाक्यों की संघटना) प्राप्त है।

(1) **पूरक वाक्य :** जिन वाक्यों में स–के रूप स्वतन्त्र क्रिया के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, उन्हें पूरक वाक्य कहा गया है। इन वाक्यों में स–के अतिरिक्त दो और स्थान हैं। इनमें से किस स्थान पर कौन-सा पद आता है—इस दृष्टि से इनके निम्न प्रभेद हैं।

(क) पहले स्थान पर संज्ञा, दूसरे पर संज्ञा-विशेषण या परसर्गयुक्त वाक्यांश आ सकते हैं। उदाहरण :—

मांगे पाली सै = मांगे चरवाहा है।

राम कूंगर सै = राम हृष्ट-पुष्ट युवक है।

पातण्य कामल्य सै = जूती बढ़िया है।

धोती छात्य पै सै = धोती छत पर है।

बाबू छोह मैं सै = पिता जी क्रोध में हैं।

(ख) पहले स्थान पर निर्देशवाचक सर्वनाम तथा दूसरे पर संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण। जैसे—

यौह धौला सै = यह सफेद है।

वाह चाकी सै = वह चक्की है।

ये माखी सैं = ये मक्खियां हैं।

ये हाम सां = ये हम हैं।

(ग) प्रथम स्थान पर परसर्ग 'नैं', 'कै', 'मैं' के साथ संज्ञा व सर्वनाम आते हैं और दूसरे पर ताप=बुखार, छोह=क्रोध, भूक=भूख, खांसी, आदि संज्ञाएं आती हैं। जैसे—

नादू कै ताप सै = नादू को बुखार है।

छोटू कै खांसी सै = छोटू को खांसी है।

नत्थू मैं छोह सै = नत्थू में गुस्सा है।

दूसरे स्थान पर आने वाली संज्ञा मालम=मालूम, ब्यौरा=पता, जाण्य=ज्ञान आदि स—क्रिया के साथ एक सकर्मक क्रिया की तरह कर्म की अपेक्षा रखते हैं। यथा—

ताऊनै सब मालम सै = 'ताऊ को सब मालूम है।'

बक्तू नै कै जाण्य सै = 'बक्तू को क्या पता है।'

हाम नै सब ब्यौरा सै = 'हमें सब पता है।'

स—के अतिरिक्त लाग=लगना, आ=आना, चढ=चढ़ना, आदि क्रियाओं के प्रयोग भी मिलते हैं। यथा—

रामू कै ताप चढ़ै सै = 'रामू को बुखार चढ़ता है।'

कढ़ियां नै ताप आवै सै = 'कढ़ियां को बुखार आता है।'

मन्नै छोह आवै सै = 'मुझे गुस्सा आता है।'

बूढे नै जाडा लागै सै = 'बूढा को सरदी लगती है।

(घ) पहले स्थान पर संज्ञा या सर्वनाम का रूप परसर्ग "नैं", दूसरे स्थान पर क्रियार्थक संज्ञा तथा तीसरे स्थान पर स—के रूपों के अतिरिक्त हो, पड़, चाही—के रूप भी आते हैं। यथा :—

काका नै न्हाणा सै = 'चाचा जी को नहाना है।'

तमनै मानणा होगा = 'तुम्हें मानना होगा।'

हाम नै आणा पड़्या = 'हमें आना पड़ा।'

उनन्हैं चालणा चाहिए = 'उनको चलना चाहिए।'

(2) **अकर्मक वाक्य** :—जिन वाक्यों में केवल दो ही अंग होते हैं, एक संज्ञा और दूसरा क्रिया, उन्हें हम अकर्मक वाक्य कह रहे हैं। जैसे :—

कूत्ता भौंसै सै = 'कुत्ता भौंकता है।'

बूढा खांसै सै = 'बूढ़ा खांसता है।'

बांदर कूदै सै = 'बन्दर कूदता है।'

(3) **सकर्मक वाक्य** :—जिन वाक्यों में दो संज्ञाएं और एक क्रिया आती है, उन्हें हम सकर्मक वाक्य कहते हैं। जैसे :—

हाली बीज खिंडावै सै = 'हाली बीज बखेरता है।'

तोता आंब खा सै = 'तोता आम खाता है।'

कूता मंगते नै पाड़ेगा = 'कुत्ता भिखारी को काटेगा।'

कुछ वाक्यों में दो की अपेक्षा तीन संज्ञाएं भी आती हैं। जैसे :—

जीतू गां नै ग्वार गेरै सै = जीतू गाय को चारा डालता है।

राम नै बाम्हण नै सीधा दीया = राम ने ब्राह्मण को भोजन सामग्री दी।

सीला ने कूत्ते कै डंडा मार्‌या = शीला ने कुत्ते को डंडा मारा।

प्रश्न उठता है कि क्या ऊपर दी गई ये तीन वाक्य संरचनाएं मूलभूत हैं और प्रत्येक परस्पर भिन्न हैं या ये सभी एक ही संरचना के स्थितिजन्य विभिन्न भेद हैं? यदि हम थोड़े ध्यान से परीक्षण करें तो सस्पष्ट हो जायेगा कि (3) के अन्तर्गत तीन संज्ञाओं वाले वाक्यों में पृथक्-पृथक् क्रियाएं प्रयुक्त हुई हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ऐसी कोई क्रिया नहीं, जिसके साथ कभी दो संज्ञाओं का प्रयोग होता है और कभी तीन का। अतः वाक्य में दो संज्ञाएं होंगी या तीन यह इस पर निर्भर है कि कौन-सी क्रिया प्रयुक्त की जा रही है। हम विश्वास के साथ यह दावा कर सकते हैं कि किसी वाक्य में संज्ञाओं की संख्या का निर्धारण क्रिया के प्रयोग पर है। संरचनाओं का भेद अतः वास्तविक भेद नहीं है। वास्तविक भेद तो क्रियाओं का है। यदि हम इन्हें श्रेणियों में विभक्त कर लें तो वाक्य संरचनाओं की व्याख्या स्वतः हो जाती है। कम से कम एक संज्ञा तो हर वाक्य में आती ही है। अतः इस दृष्टि से वाक्य की संरचना को हम संज्ञा वाक्यांश तथा क्रिया वाक्यांश—इन दो खण्डों में विभाजित कर सकते हैं। इन्हें ही हिन्दी व्याकरण में **उद्देश्य** और **विधेय** से नामांकित किया गया है। विधेय के अन्तर्गत वाक्य का वह सारा शेष अंश आ जाता है जो क्रिया पर आश्रित है। विधेय की संरचना अलग-अलग प्रकार से है और यह भेद क्रिया पर आधारित है। इस दृष्टि से देखने पर वाक्य के दो ही खण्ड होंगे। क्रियाओं को हम निम्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं :—

(क) स—आदि

(ख) अकर्मक : आ, बैठ, आदि।

(ग) सकर्मक : खा, खींच, आदि।

इनके आगे प्रभेद हो सकते हैं। यथा—समझ, छांट, मान, आदि सकर्मक क्रियाएँ, जिनके साथ दो संज्ञाएं आती हैं। लोग **राम नै नेता** मानै सै—लोग रामू को नेता मानते हैं।

अब ऊपर दिये गये अकर्मक और सकर्मक वाक्यों की संरचना में केवल दो खण्ड मानने होंगे—उद्देश्य और विधेय। विधेय कई प्रकार का होगा। पर पूरक वाक्यों पर यह संरचना लागू नहीं होती—ऐसा लगता है। थोड़ी खेंचातानी के साथ सम्भवतः पूरक वाक्यों को भी इसी संरचना के अन्तर्गत घसीटा जा सकता है। यदि ऐसा करना सैद्धान्तिक दृष्टि से समीचीन नहीं जंचता तो फिर हरियाणवी में दो मौलिक संरचनाएं मानी जा सकती हैं। वस्तुतः दो अलग-अलग संरचनाएं मानने में कुछ सुविधा है। पूरक वाक्यों में प्रयुक्त संज्ञा तथा पूरक का संबन्ध स—क्रिया के साथ भिन्न-भिन्न स्तर पर है।

किसी भी भाषा में वाक्य की मूलभूत संरचना निर्धारित करने के बाद उन नियमों को निश्चित करना शेष रह जाता है, जिनको लागू करके किसी भी वाक्य की निष्पत्ति की जा सकती है। साथ में उन परिस्थितियों का भी निर्देश करना पड़ता है, जिनमें वे नियम लागू होते हैं। एकाध उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मोती खीर खाणा चाहवै सै'=मोती खीर खाना चाहता है वाक्य को लीजिये। चाह—एक सकर्मक धातु है। अत: वाक्य की संरचना होगी—**संज्ञा वाक्यांश—संज्ञा वाक्यांश क्रिया।** दूसरे स्थान पर 'खीर खाणा' संज्ञा वाक्यांश का प्रयोग हुआ है। यह वाक्यांश वस्तुत: एक वाक्य का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका स्वरूप होगा—'मोती खीर खावै।' अत: पूरे वाक्य का मौलिक स्वरूप होगा : मोती— मोती खीर खावै—चाहवै सै। वाक्य की इस मौलिक संरचना पर कुछ नियम लागू होंगे जो इसे ऊपर दिये वाक्य में परिवर्तित कर देंगे। मोटे तौर पर ये नियम उस स्थिति में लागू होते हैं, जबकि चाह—क्रिया के कर्म (जो वाक्य है) का कर्त्ता चाह—के कर्त्ता के समान हो। ऊपर दिये विश्लेषण में चाह—का कर्त्ता 'मोती' है और खा—का भी वही। इस अवस्था में निम्न नियम लागू होते हैं :—

(1) आश्रित वाक्य के कर्त्ता का लोप,

(2) आश्रित वाक्य की क्रिया के स्थान पर क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग।

अत: मोती—मोती खीर खावै—चाहवै सै →मोती खीर खाणा चाहवै सै।

इस विश्लेषण में आश्रित वाक्य की संरचना भी प्रधान वाक्य के अनुरूप ही है। नियम लागू करने पर उसमें परिवर्तन हुआ है।

ऊपर दिये गये नियम वैकल्पिक हैं। इसके अतिरिक्त वाक्य का दूसरा रूप भी उपलब्ध होता है। मोती चाहवै सै क मैं खीर खाऊं। इसकी निष्पत्ति के लिये नीचे दिये नियमों को लागू करना होता है :—

(1) आश्रित वाक्य का स्थान परिवर्तन।
मोती चाहवै सै मोती खीर खावै

(2) आश्रित वाक्य में मोती के स्थान पर उत्तम पुरुष का प्रयोग।
मोती चाहवै सै मैं खीर खाऊं

(3) संयोजक 'अक' का वैकल्पिक प्रयोग (स्वरान्त पद के बाद अ का लोप होकर 'क' मात्र शेष रह जाता है।)
मोती चाहवै सै (क) मैं खीर खाऊं।

यदि प्रधान और आश्रित वाक्य के कर्त्ता भिन्न हैं तो फिर वे नियम जिन्हें ऊपर वैकल्पिक कहा गया है, लागू होंगे। यथा—मोती चाहवै सै क सरतू खीर खा—मोती चाहता है कि सरतू खीर खाये। एक और वाक्य लीजिये।

ओह कुत्ता भाज्य गया जिसनै दूध खिंडाया था= वह कुत्ता भाग गया जिसने दूध उंडेल दिया था।

यह एक जटिल वाक्य है। इसकी निर्मिति दो वाक्यों से हुई है। ये हैं—(1) कुत्ता भाज्य ग्या। (2) कुत्ते ने दूध खिंडाया था। पहले वाक्य को प्रधान वाक्य कह सकते हैं और दूसरे को आश्रित। जटिल वाक्य में मुख्य वाक्य तो ज्यों का त्यों प्राप्त है, पर आश्रित वाक्य बहुत कुछ परिवर्तित रूप में है। प्रधान वाक्य में भाज्य जा—अकर्मक संयुक्त क्रिया है। अत: वाक्य की संरचना होगी— **संज्ञा वाक्यांश**(उद्देश्य)—**क्रिया वाक्यांश**(विधेय)। केवल दो ही अंश होंगे। आश्रित वाक्य का सम्बन्ध उद्देश्य, कूता, से है। और दोनों वाक्यों में कर्त्ता समान है। अत: जटिल वाक्य का स्वरूप होगा—कूता—कूते नै दूध खिंडाया था—भाज्य ग्या। इस ढांचे पर निम्न नियम लागू होंगे :—

(1) आश्रित वाक्य के समान अंश का लोप।
कूता—नै दूध खिंडाया था—भाज्य ग्या

(2) लुप्त अंश के स्थान पर सम्बन्धवाचक सर्वनाम का आदेश।
कूता **जिस** नै दूध खिंडाया था भाज्य ग्या।

(3) मुख्य वाक्य के कर्त्ता से पूर्व निर्देश वाचक सर्वनाम का आगम।
ओह कूता जिसनै दूध खिंडाया था भाज्य ग्या।

हरियाणावी वाक्य रचना का ऊपर दिया गया विवरण केवल समस्या के दिग्दर्शन के लिये किया गया है। वस्तुतः वाक्य रचना की समस्याएं अनन्त हैं। इनकी व्याख्या और समाधान के लिये तो विस्तृत विवरण की आवश्यकता है। अन्यत्र संभवतः कभी प्रस्तुत किया जा सकेगा।

परिभाषिक शब्दावली

अंग stem
अकर्मक intransitive
अकर्मक वाक्य sentence with an intransitive verb
अक्षर syllable
अग्र front
अघोष voiceless
अनिवार्य कोटि obligatory category
अनुज्ञा optative
अनुनासिक nasalized
अन्विति agreement
अपूर्णकृत् imperfect participle
अर्ध दीर्घ half long
अर्ध विवृत half-open
अर्ध संवृत half-close
आज्ञा imperative
आतत tense
आंतरिक विवृति internal open functure
आन्तसुर terminal pitch
आन्तिक विवृति pausal juncture
आभ्यन्तर प्रयत्न buccal manner of articulation
आश्रित वाक्य subordinate clause
आस्य स्वर oral vowel
उच्च high
उच्च स्वर high vowel
उच्चारण articulation
उच्चारण तत्व articulatory features
उच्चारण स्थान point of articulation
उच्चारणात्मक तत्व articulatory feature
उत्क्षेपण retroflexion
उत्तम पुरुष first person
उद्देश्य topic (subject)
उपरूप alternant
कथन discourse
कण्ठ्य velar
करण articulator
कर्तृ वाच्य active voice
कर्म वाच्य passive voice
काकल glottis
काकु pitch contour
काकु पद्धति intonation pattern
कारक case
कृत् primary suffix
कौमा विवृति comma functure
क्रिया verb
क्रियार्थक संज्ञा verbal noun
क्रियावाक्यांश verb phrase
क्रिया विशेषण adverb
क्रिया सहायक verbal auxiliary
खण्ड segment
खण्डीय ध्वनि segmental phone
खण्डेतर ध्वनि suprasegmental
गुणवाचक विशेषण qualitative adjective
घोष voiced
दीर्घ long
द्रुतवृति allegro
द्वित्व reduplication
ध्वनि speech sound
ध्वनि खण्ड speech sound
ध्वनि संरचना phonology
ध्वनि लिपि phonetic script
नाद voice
नासिक्य nasal
निपात particle
निर्देशवाचक विशेषण demonstrative adjective
पद word
पद भेद word classes
पर प्रत्यय suffix
परसर्ग post position
पश्च back
पार्श्विक संघर्षण lateral friction
पुरुष person
पूरक compliment
पूरक वाक्य copula sentence
पूर्ण कृत् perfect participle

परिभाषिक शब्दावली

प्रत्यय affix
प्रथम पुरुष first person
प्रथमा (विभक्ति) direct
प्रधान वाक्य principal sentence
प्रयत्न manner of articulation
प्रार्थना polite imperative
प्रेरणार्थक causal
बाह्यप्रयत्न extra-buccal manner of articulation
बाह्यविवृति external open juncture
बोली dialect
भविष्यत् (काल) future tense
भाषण speech, discourse
भाषा language
भाषा भूगोल dialect geography
भाषा शास्त्र luiguistics
भूतकाल past tense
मध्य central
मध्यम पुरुष second person
मध्य स्वर central vowel
महाप्राण aspirate
महाप्राणता aspiration
मुख्य वाक्य principal sentence
मूर्धन्य retroflex
मूल basic
यौगिक derivative
रूढ़ primary, underived
रूप morph
रूप प्रत्यय inflectional suffix
लिंग gender
लोडन flap
वचन number
वर्तमान (काल) present tense
वाक्य sentence
वाक्य विचार syntax
वाक्यांश phrase
वाच्य voice (active passive) etc.
विधि mood, future imperative
विधेय predicate (comment)
विभक्ति vibhakti (case)
विभक्ति इतर (प्रत्यय) derivative suffix
विरोध contrast, opposition
विवृत open
विवृत अक्षर open syllable
विवृति juncture
विशेषण adjective
विस्मयबोधक (सूचक) ihterjection
वैकल्पिक कोटि optional category
व्यंजन consonant
व्यंजनसयोग consonant cluster
व्याकरिणककोटि grammatical category
व्युत्पन्न derived
शून्य प्रत्यय zero suffix
श्रवणता acoustics
संख्यावाचक विशेषण quantitative adjective
संघटक constituent
संघटना construction
संघर्षण friction
संज्ञा noun
संज्ञा वाक्यांश noun phrase
संयोग sequence, cluster
संयुक्त क्रिया compound verb
संयोजक connective
संयोजक प्रत्यय linking affix
संरचना construction
संवृत close
संवृत अक्षर closed syllable
सकर्मक transitive
सकर्मक वाक्य sentence containg transitive verb
समास compound
सम्बन्धवाचक विशेषण relative adjective
सम्बोधन vocative
सम्भाव्यभूत past contingent
सर्वनाम pronoun
सहायक क्रिया auxiliary verb
सामान्य (विभक्ति) oblique
सामान्य संभावना contingent (general)
सुर pitch
स्पर्श stop
स्वनिम phoneme
स्वर vowel
स्वरसंयोग vowel pequence
ह्रस्व short

नाट्य–कला की जन्मभूमि

—चिरंजीत—

हरियाणा भारतीय नाट्यकला की जन्मभूमि है, इस कथन पर, वर्तमान स्थिति को देखते हुये, तुरन्त कोई विश्वास नहीं करेगा। आज नाटक के संदर्भ में जब कोई हरियाणा की बात करता है, तो लोकनाटक 'सांग' को ही हरियाणवी नाट्य-परम्परा का प्रतीक मान लिया जाता है। यह ठीक है कि उत्तर भारतीय लोक-नाट्य परम्परा में उत्तर प्रदेश की नौटंकी, राजस्थान के ख्याल, मध्य प्रदेश के माच की भांति हरियाणावी सांग का अपना विशेष महत्व है। यह भी ठीक है कि धार्मिक, ऐतिहासिक, शृंगारिक एवं सामाजिक कथानकों के आधार पर रचित हरियाणवी सांगों की बरसों पुरानी अपनी समृद्ध एवं लोकप्रिय परम्परा है और उसके साथ दीप चन्द और लखमी चन्द जैसी प्रतिभाओं के नाम जुड़े हुये हैं। इस पर भी यह सर्वविदित है कि सांग का इतिहास इतना प्राचीन नहीं कि वह हरियाणा को नाट्यकला की जन्म भूमि होने का गौरव प्रदान कर सके। इस तथ्य की पुष्टि के लिये हमें अपनी गवेषणा-यात्रा सुदूर वैदिक युग से प्रारम्भ करनी होगी।

यह अब प्रमाणित हो चुका है कि भारत में सर्वप्रथम आर्य-संस्कृति का विकास एवं वैदिक वांङमय का सृजन उस भू-खंड पर हुआ था, जो आज हरियाणा राज्य के नाम से विख्यात है। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय नाटक का आदि रूप वेदों विशेषकर ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलता है। ऋग्वेदकाल में नृत्यकाल का इतना प्रचार हो चुका था कि उषा का वर्णन करते हुये ऋषियों ने उसकी उपमा बार-बार एक नर्तकी से दी। इसके अतिरिक्त नाटक के मुख्य अवयव संवाद का प्रारूप भी पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी के कथोपकथन में उपलब्ध होता है। ऋग्वेद में सोमपान के अवसर पर एक लघु अभिनय का प्रसंग भी मिलता है।

भारतीय नाटक की उत्पत्ति वेदों की ऋचाओं से हुई। इस तथ्य की पुष्टि भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र की रचना-संबंधी आख्यान से भी होती है। देवताओं की प्रार्थना पर पितामह ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद), यजुर्वेद से अभिनय (क्रिया-कलाप), सामवेद से गीत और अथर्ववेद से रस लेकर पंचम वेद की रचना की और उसे प्रयोगार्थ भरतमुनि को सौंप दिया। वही पंचम वेद भरत मुनि रचित नाट्य-शास्त्र कहलाया।

नाटक की दैवी उत्पत्ति संबंधी इस आख्यान से भी यही तथ्यात्मक निष्कर्ष निकलता है कि चारों वेद ही भारतीय नाटक का आदि स्रोत हैं और जिस पावन भू-खंड पर वेदों का सर्वप्रथम प्रकाश एवं सृजन हुआ, वही ब्रह्मर्षिदेश हरियाणा भारतीय नाटक की जन्म भूमि है।

वैदिक युग में हरियाणा में उत्पन्न हुए भारतीय नाटक का रामायण एवं महाभारत काल में उत्तरोत्तर विकास हुआ, इसका साक्ष्य वाल्मीकि रामायण और वेदव्यास रचित महाभारत से मिलता है। महाभारत-काल में हरियाणा धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र के नाम से प्रख्यात था और वर्तमान दिल्ली एवं ब्रजप्रदेश उससे अलग नहीं थे। कौरव-पांडव युद्ध से पहले दोनों राजपरिवारों एवं श्री कृष्ण के यादवकुल के संबंध में ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं, जिन से पता चलता है कि महाभारत-काल में नृत्य-संगीतमयी नाट्यकला अत्यन्त विकसित और उन्नत हो चुकी थी। जनता में उसका व्यापक प्रचलन तो था ही, हर राजकुमार और राजकुमारी के लिये भी उसकी शिक्षा-दीक्षा आवश्यक थी। उसी शिक्षा-दीक्षा के कारण अज्ञातवास के दिनों में अर्जुन ने बड़ी सफलता से बृहन्नला का स्वांग भरा था। यादवकुल में तो श्रीकृष्ण नटनागर के नाम से विख्यात थे। प्रद्युम्न के विवाह के लिये यादवों ने वज्रनाभ के नगर में जाकर जो रामायण का नाटक अभिनीत किया था, उसका वर्णन पढ़कर आज की राम लीला और हरियाणवी सांगों का स्मरण हो आता है। महाभारत में और भी कई नटों और नटमंडलियों के कला-कौशल का उल्लेख मिलता है।

महाभारत के युद्ध में इतने विशाल पैमाने पर नर-संहार हुआ कि कुरुक्षेत्र एक प्रकार से श्मशान-सा बन के रह गया। चारों ओर शोक और नैराश्य छा गया। लीलामय भगवान श्री कृष्ण मथुरा छोड़कर सुदूर द्वारिका में जा बसे। अप्रत्यक्ष रूप से यह इस बात का संकेत था कि कुरुजनपद रागरंग-रस विहीन हो गया है। संभवतः उसी काल में यहां की बची-खुची जनता ने भूतनाथ भगवान शिव को अपना इष्ट देव बनाया। यह सब कुछ होने पर भी हरियाणा की मिट्टी ने अपनी प्रकृति नहीं बदली। मिट्टी फिर महक उठी। वीर-प्रसूधरा ने फिर हल और तलवार के धनी वीरपुत्रों को जन्म दिया। वे वीर पुत्र यौधेय कहलाये, जिन्होंने यौधेय गणराज्य की स्थापना की। वीर रस का सहचर है शृंगार। फिर मृदंग बजने लगे, नृत्य होने लगे, गीत गूंजने लगे और नाट्य अभिनय के साज सजने लगे। यौधेय जनपद की राजधानी रोहितक (रोहतक) नगर था। गुप्तकालीन, ग्रंथों में रोहितक (रोहतक) के मृदंगियों, गायकों और नटों की बड़ी प्रशंसा मिलती है। स्पष्ट है कि यौधेयकाल में हरियाणा की धरती ने नाट्यकला की जननी के अपने पुराने विरुद को निभाया। परन्तु उस विरुद का वास्तविक स्वरूप सम्राट हर्षवर्द्धन के राज्यकाल में दृष्टिगोचर हुआ।

सम्राट हर्षवर्द्धन ने स्थाण्वीश्वर (वर्तमान थानेसर) को अपनी राजधानी बनाया। वे वीर योद्धा, कुशल प्रशासक, बौद्धमत के सच्चे अनुयायी होने के अतिरिक्त उच्च कोटि के नाटककार भी थे। उन्होंने तीन संस्कृत नाटकों—'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली', और 'नागानन्द' की रचना की। उनके आश्रित कवि बाणभट्ट के 'हर्षचरित' से ज्ञात होता है कि राजप्रसाद में प्रत्येक उत्सव पर नाट्याभिनय होता था और राज्य-भर में अभिनेताओं, संगीतकारों और नर्तकियों का बड़ा आदर-सम्मान था। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उस काल संबंधी अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'बाण-भट्ट की आत्मकथा' में यह जो लिखा है कि नवागंतुक बाणभट्ट का पहले-पहल स्थाण्वीश्वर के राजदरबार में प्रवेश नाटकमण्डली की अभिनेत्री निपुणिका के माध्यम से हुआ, उस से भी सम्राट हर्षवर्धन के राज्यकाल में नाट्यकलाकारों की गौरवपूर्ण स्थिति और सम्मान का पता चलता है। वस्तुतः वह समय हरियाणा में नाट्यकला की उन्नति का चरम-बिंदु था। सम्राट हर्ष के पश्चात् हरियाणा में नाट्यकला का ह्रास शुरू हुआ।

सम्राट हर्ष के बाद हरियाणा में नाट्यकला के ह्रास का मुख्य कारण था, उत्तर-पश्चिम की ओर से आने वाले एक के बाद एक विदेशी आक्रमणकारियों के रेले से उत्पन्न हुई राजनीतिक अस्थिरता और अशांति। दिल्ली तक पहुंचने के लिये हर आक्रमणकारी सेना हरियाणा की धरती से होकर गुजरती, यहां पड़ाव डालती और मारकाट मचाती। यहीं के तरावड़ी और पानीपत के मैदानों में दिल्लीपति—चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान—विदेशी आक्रमणकारी को रोकने के लिये उससे लड़ाई लड़ता। यह स्थिति 19वीं शताब्दी अर्थात् मुगलकाल तक चली। सदियों की राजनीतिक अस्थिरता एवं अशांति ने हरियाणा की पारम्परिक संस्कृति एवं नाट्यकला को छिन्न-भिन्न कर दिया। मुगल-शासनकाल में हरियाणा के पुराने कलाकारों में से कुछ तो भांड और नक्काल बनकर दिल्ली में जा बसे, शेष स्वांग भर कर जीविकोपार्जन करने लगे। फलतः संसार भूल गया कि हरियाणा कभी नाट्यकला की जन्म भूमि था।

हरियाणा में नाट्यकला एकदम विलुप्त हो गई हो, ऐसी बात भी नहीं। जन-साधारण को दुःख और विपत्ति भुलाने के लिये मनोरंजन का कोई साधन तो चाहिये। जनसाधारण को यह मनोरंजन पारम्परिक स्वांगों द्वारा मिलता था। डॉ० दशरथ ओझा ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास' में ऐसा मत प्रकट किया है कि नवीं-दसवीं शताब्दी में वज्रयानी योगतन्त्र साधना में डोमनियों के स्वांग का अपना विशेष स्थान था। उस काल खंड में हरियाणा के जन-जीवन पर नाथ सम्प्रदाय के योगियों एवं शैवों का काफी प्रभाव था। हो सकता है कि उसी के फलस्वरूप हरियाणा में स्वांग नाटकों का प्रचार-प्रसार हुआ हो और बाद में वही लोकनाटक 'सांग' नाम से प्रख्यात हुए हों। 'सांग' शब्द 'स्वांग' का बिगड़ा हुआ रूप है या 'संगीत' का, इसके बारे में विद्वानों में कोई मतैक्य नहीं।

16वीं सदी से हरियाणा में रासलीला और रामलीला का भी प्रचार-प्रसार हुआ। जैसा कि सर्वविदित है, मुस्लिम शासन-काल में भारत की हारी हुई संत्रस्त हिन्दू-जनता ने भगवान की भक्ति का सहारा लिया। मथुरा-वृन्दावन के कृष्ण भक्तों ने आराधना की पद्धति के रूप में रासलीला का विकास किया। उन की देखादेखी रामभक्तों ने उसी शैली में रामलीला की उद्भावना की। हरियाणा की धर्मपरायण जनता ने दोनों को अपनाया, परन्तु इनके कारण हरियाणा के अपने सांग-नाटकों की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई।

हरियाणा में सांग नाटकों की लोकप्रियता का मुख्य कारण है उनके वीररस प्रधान कथानक, जो हरियाणा की जनता की आदिकाल से चली आ रही वीरभावना के अनुरूप भी हैं और उसे बल भी देते हैं। यह एक ऐतिहासिक

तथ्य है कि हरियाणा की जनता ने हमेशा हर आक्रमणकारी का डट कर मुकाबला किया है। हरियाणा के वीरों ने सन् 1857 की सैनिकक्रांति में जो योगदान दिया, उसकी गौरव-गाथा इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है। आज स्वतन्त्र भारत की सेना में भी हरियाणवी वीरों का गौरवपूर्ण स्थान है। मतलब यह है कि जब तक हरियाणा की वीर-परम्परा अक्षुण्ण है, तब तक सांग की लोकप्रियता भी अक्षुण्ण रहेगी। हरियाणावासी हल और पतवार के धनी हैं, तो लोकनाट्यकला के भी धनी हैं।

हरियाणा के लोकगीत : एक विशिष्ट अध्ययन

–डॉ. भीम सिंह

वैसे तो उत्तर से पूर्व-पश्चिम पर्यन्त अवस्थित भारत के सभी जनपदों के लोकसाहित्य में एकाधिक सामान्य तत्त्व लक्षित होते हैं और लोकगीतों में तो सांस्कृतिक एवं रागात्मक एकता के सूत्र अपेक्षतया सुसम्बद्ध एवं सुसमन्वित रूप में होने के कारण प्रथम दृष्टि में ही उजागर होने लगते हैं। किन्तु एक जनपद से दूसरे जनपद में केवल गीतों की भाषा, संख्या, रीति-रिवाज की मात्रा, उत्सव-संस्कारों के स्वरूप एवं मान्यतापरक ईषत्-विभेदों तथा भौगोलिक सीमांचल से प्रभावित जीवन-रचना के अन्तर को छोड़कर अन्य लक्षणों में पर्याप्त सादृश्य प्राप्य है। प्राकृतिक साधनों, धार्मिक एवं सामुदायिक जीवन-पद्धति के आकार-प्रकारों, जीवन-व्यापार और शिल्पतन्त्र के विकास-कौशल की संभावनाओं, अन्तःग्राह्य सम्पर्क तथा जातीय जीवन की मूल प्रेरणाओं का सम्मिश्रण चेतनाचेतन प्रक्रिया द्वारा लोकगीतों की वस्तु-शैली में व्याप्त रहता है। इन्हीं तत्वों की टोह-टंडवाल करके हम जनपदीय लोकगीतों के स्वरूप का सम्यक् विश्लेषण कर सकते हैं तथा उनकी सूक्ष्म रंगत पर प्रकाश डालने में सक्षम हो सकते हैं। पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, कन्नौजी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली और हरियाणवी लोकगीतों की पारस्परिक तुलना करने पर उपर्युक्त तथ्यों की व्यंजना में संदेह का लेशमात्र भी अवकाश नहीं रहता।

हरियाणा के लोकगीतों का धरातल बड़ा रंग-बिरंगा, उन्मुक्त तथा जीवन की करवटों से आन्दोलित है। इस प्रदेश के वासियों की धर्म-कर्म, अर्थ-अनर्थ, काम-निष्काम आदि वृत्तियां, परम्परा, इतिहास, प्राकृतिक प्रकोप एवं आमोद-प्रमोद से युक्त जीवन-लीलाओं का स्वतः स्फुरित भावोद्गारपूर्ण विरेचन ही तो लोकगीतों के रूप में प्रतिध्वनित होता चला आ रहा है। लोकगीतों की परम्परा ऋतुचक्र की भाँति नव-नवोन्मेषशालिनी भाव-प्रभा से समुज्ज्वल एवं तरोताजा रहती है। बासीपन इसमें नहीं होता। हाँ, आसव को महार्घ एवं मादक बनाने वाली पुरानेपन की रासायनिक प्रक्रिया का महत्व इसमें अवश्य होता है। इतिहास, आख्यान और कल्पना के अंश लोकगीतों की कड़ियों में जुड़ते रहते हैं और यहाँ हमें अतीत, वर्तमान के गले में बाँहें डाले दिखाई देता है। दूर्वादल की भाँति लोकगीत के मूल तक पहुँचना दुस्साध्य कार्य है और जिस प्रकार दूर्वा स्थान-स्थान पर मिट्टी से सम्पर्क स्थापित कर अपनी शृंखला के नए-नए मूलों का जाल बिछाती चलती है वैसे ही लोकगीत भी लोक के नाना कंठों और स्वरों में रमकर उच्चरित होता रहता है; निस्संदेह गेयता तथा मानवानुभूति की सच्चाई में लोकगीतों के चिर-जीवन का रहस्य छिपा हुआ जान पड़ता है।

इस संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि हरियाणा की सांस्कृतिक सीमाएँ उसकी वर्तमान प्रशासकीय एवं प्रान्तीय सीमाओं से अधिक विस्तृत हैं। मेरठ और आगरा का बहुत बड़ा भाग, दिल्ली, अलवर-भरतपुर और अबोहर-फाजिल्का पर्यन्त लगभग एक ही प्रकार की भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन और प्रथाएँ पाई जाती हैं, जिनसे इन सब भूभागों का किसी एक सांस्कृतिक इकाई का अंग होना निश्चित-सा लगता है। यही कारण है कि हरियाणवी की उपबोलियों में पंजाबी, राजस्थानी, खड़ीबोली, ब्रज, मेवाती आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है। ध्वनि, स्वर, उच्चारण, शब्दों और मुहावरों पर यह छाप सुविदित है। लोकगीतों के बोलों में इन पड़ोसी उपबोलियों का पुट मिलता है।

हरियाणवी लोकगीतों में भी स्थानीय जीवन की गहरी रंग-रेख उभरती चली गई है। इन गीतों में जीवन के प्रमुख संस्कारों, पर्वोत्सवों, धार्मिक अनुष्ठानों, ऋतुओं, व्यवसायों, अथवा आजीविका के साधनों और उनसे उत्पन्न मानसिक-भौतिक प्रतिक्रियाओं का चित्रण हुआ है। पारिवारिक सम्बन्धों का स्वरूप एवं दिशा-बोध भी इनमें केन्द्रित हुआ है। समाज के व्यवहार, आचार-विचार, नीति-अनीति तथा जीवन-दर्शन पर भी खरा प्रकाश डालने वाली सामग्री इनमें अन्वेषणीय है। पुरुष और नारी मनोविज्ञान के संकेतों की भी लोकगीतों में कमी नहीं है। स्वच्छन्द

प्रेम के वर्णन यक्ष-तक्ष श्लीलता की सीमा का उल्लंघन करते प्रतीत होते हैं। मन के भावों के दुराव को यहाँ अश्लील माना जाता है। भीतर वाले अथवा अन्तःकरण की बात कहने में संकोच क्या करना? इनमें स्पष्टोक्ति के द्वारा अश्लील भी श्लील हो जाता है। नारी के शृंगार, मान-विरह, आशा-आकांक्षा, चाव-भाव, राग-द्वेष, वस्त्रा-भूषण-प्रेम आदि का परिचय इन गीतों में सहज ही सुलभ हो जाता है। नीति, भक्ति और महापुरुषों के जीवनादर्श तथा शूरवीरों की वीरता का स्तवन करने वाले गीतों की संख्या भी बेशुम्मार है। हरिश्चन्द्र तथा हकीकतराय जैसे धर्मवीरों, मोरध्वज तथा कर्ण जैसे दानवीरों, कृष्ण-सुदामा जैसे मित्रों, आल्हा-ऊदल, भूरा-बादल, हाड़ी-रानी, अमर सिंह राठौर, जवाहर सिंह और भाऊ जैसे युद्धवीरों के प्रशस्तिमूलक इतिहास के अंश-विशेष को केन्द्र बना कर छोटे-बड़े गीतों को गाया जाता है।

हरियाणवी लोकगीतो की व्यापक फलक से उभरती हुई आंचलिक विशेषताओं तथा उनकी विषय-वस्तु से सम्पृक्त परिचयात्मक पृष्ठभूमि के बाद हम लोकगीतों का सरल एवं व्यावहारिक वर्गीकरण निम्न शीर्षकों में कर सकते हैं :—

(1) सावन के गीत
(2) फागुन के गीत
(3) बारहमासिया गीत
(4) पर्वोत्सवों से सम्बन्धित गीत
(5) शृंगार रस से पूर्ण विरह-मिलन के गीत
(6) ऐतिहासिक अथवा वीर रस से सिक्त साँके तथा पंवारे
(7) भक्ति-नीति समन्वित-गीत
(8) सांस्कृतिक पुनर्जागरण से सम्बन्धित राष्ट्रीय एवं सुधारमूलक गीत
(9) कृषि एवं दैनिक जीवन की समस्याओं से ओतप्रोत गीत-तथा
(10) विविध गीत

विषय की दृष्टि से किया गया यह वर्गीकरण यद्यपि नितांत वैज्ञानिक नहीं है तथापि विषय को स्पष्ट करने की दृष्टि से सुविधाजनक अवश्य है। उपर्युक्त कोटि के विभिन्न लोकगीतों के विषय का अन्तर्भाव एक-दूसरे के भीतर होता है और इससे बचना सुगम प्रतीत नहीं होता। कारण, लोकगीत जीवन के एक संश्लिष्ट चित्र को उभारते हैं, जिन्हें पृथक्-पृथक् करने से गीत की समूची भावधारा अथवा भाव-समष्टि के स्वरूप के खंडित होने की आशंका बनी रहती है और इससे लोकगीत की अखंडता पर आघात हो जाता है, ठीक ऐसे ही जैसे कि ईंट-पत्थर के टुकड़े की चोट से अनेक पतली-पतली एवं लम्बी-लम्बी खरोंचनुमा दरारों में तड़का हुआ शीशा दृष्टि-बिम्ब को धुंधला देता है। अतः प्राकृतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक सूत्रों को एक साथ समेटने वाले एक ही वर्ग के, एक अथवा अनेक लोकगीतों की अलग-अलग चीरफाड़ की भी अर्थ एवं भाव-व्यंजना की दृष्टि से एक सीमा बाँधनी पड़ती है। यही मजबूरी है जिससे बाध्य होकर यद्यपि हम इस वर्गीकरण को सार्थक, सुविधाजनक एवं स्फटिकवत् तो बना सके हैं किन्तु दर्भांकुरवत् सुतीक्ष्ण एवं नुकीला नहीं। किन्तु हमारा उद्देश्य तो आम खाने से है, पेड़ गिनने से बिल्कुल नहीं। प्रस्तुत वर्गीकरण को इसी दृष्टि से अपनाया भी गया है। अब हम क्रमशः अत्यन्त संक्षेप में प्रत्येक वर्ग के गीतों पर सोदाहरण प्रकाश डालेंगे।

सावन के गीत

सावन के गीतों से यहाँ तात्पर्य है— वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले लोकगीतों से। ज्यों ही सावन की झड़ी लगती है, त्यों ही ग्रामीण जीवन में अद्भुत हलचल प्रारम्भ हो जाती है तथा ग्रीष्मकालीन जड़ता का अन्त हो जाता है। किसान अपने खेतों की राह लेता है और फसलें बोने में दिन-रात तत्पर रहता है। पशुओं को लेकर गोपाल भी खेतों में पहुँच जाते हैं। इधर हलधर का हल और उधर गोचरण के दृश्य। गोपाल बांसुरी बजा रहे हैं और गौएँ चर रही हैं। कृषक वधुएँ वहीं रोटी-पानी तथा बैलों का चारा लेकर, ठुमक-ठुमक करती, अपने रंगीन वस्त्रों को लहराती तथा आभूषणों को झंकृत करती खेतों की पगडंडियों पर रंग बिखराती चलती हैं। मेघों की घटाएँ गगन में उमड़-घुमड़ कर दौड़ती रहती हैं और रिमझिम पानी बरसाती रहती हैं। मेघों के नीचे से बहता हुआ ब्यार का झोंका प्राकृतिक वातावरण को सुखद एवं सुहावना बना देता है। दिन में गाँव सूने-से लगते हैं क्योंकि अधिकांश

लोग खेतों में चले जाते हैं। किन्तु संध्या के होते ही गांव के चौराहों, चबूतरों, चौकों और गलियों की रौनक बहुत बढ़ जाती है। दिन छिपते-छिपते भोजन से निवृत्त होकर युवकों और वृद्धों की महफिलें जम जाती हैं। कहीं घड़वा-बीन-बांसुरी के साथ रागिनियों की गूंज से मस्ती का समां बंध जाता है तो कहीं वृद्ध लोग अलहैतों से ढोलक की थाप और ऊँचे स्वरों में आल्हा गीत का रसास्वादन करते-करते हुक्कों की गुड़गुड़ाहट से स्वर में स्वर मिला रहे होते हैं। गलियों में किशोरियों के कलकंठ से निकलते हुए समूहगानों की कड़ियाँ ग्राम के वातावरण पर कुछ इस प्रकार छा जाती हैं कि इन गीतों की उत्तरोत्तर फैलती हुई प्रतिध्वनि एवं लय से अंधकार में डूबा हुआ समस्त ग्राम-प्रांतर स्वरालाप की लहरियों से उत्पन्न संगीतमय आलोक से उज्ज्वल हो उठता है और ग्राम के उपवनों में बैठे हुए मोर 'कुक् कुक् पीहों' की केका-ध्वनि से सारे परिवेश को जागृत कर देते हैं। खेतों की बीजाई के बाद तो ग्रामों में रात्रि का यह सोल्लासमय वातावरण दिन-प्रतिदिन और भी गहरा होता जाता है।

तालाब वर्षा के जल से भर जाते हैं और उनके किनारे के बड़े-बड़े वट-पीपल, नीम आदि के वृक्ष लहलहा उठते हैं। सावन में इन वृक्षों तथा बाग-बगीचों में झूले डाल दिए जाते हैं और किशोरी बालाएँ तथा नव-वधुएँ पींघों पर पेंग-पिंजोली बढ़ाती हुई दोलायमान दृष्टिगत होती है। एक वधू अपनी सास से झूले की सज्जा के लिए आग्रह करती है अथवा अपने पीहर जाने की अनुमति उससे मांगती है। किन्तु सास इस बात पर भी उसे प्रताड़ना दिलाती है और वह उसे वंशवृद्धि की लालसा के कारण ही सहन कर रही है। परन्तु पतिदेव अपनी मां और पत्नी दोनों को ही अपने चातुर्य से प्रसन्न रखने के लिए यत्नशील हैं। संवादात्मक गीत के बोल इस प्रकार हैं :—

आया री सासड़ सामण मास, पींघ[1] बेंटा दे री पीलै पाट की।
म्हारै तै बहुअड़ ना पीला पाट, जाय बेंटाइए ऐ अपणे बाप कै।
आया री सासड़ सामण मास, सीढ़ी घड़ा दै री चन्दन रूंख[2] की।
म्हारै तै री बहुअड़ ना चन्दन ना रूंख, जाय घड़ाइए ऐ अपणै बाप कै।
आया री सासड़ माई जाया बीर, हम नैं खंदा[3] दै री म्हारे बाप कै।
इब कै तै बहुअड़ कातिक का काम, फैर खंदाबां थारे बाप कै।
कातिक सासड़ बीरा का ब्याह, इतनें तै जांगी री बैरण दूसरै।
सुण लै रै बेंटा बहुअड़कै बोल, ओछे घरां की बोलै बोलनैं।
कह तै मां मेरी ड्यां बिडार[4] कह तै घाल्ला धण[5] कै बाप कै।
क्यांहनैं[6] बेंटा ड्यां बिडार, क्यांहनैं रे घाल्लां धण कै बाप कै।
या धण बेंटा, जन्मैंगी पूत, बेल बधैंगी थारे बाप की।
या धण मां जन्मैंगी धी, कुल लजावै री म्हारे बाप का।
उठी न धण म्हारी हो लौ न त्या र, बीरध[7] रचाई थारे बाप कै जी।
झूठे हो पिया म्हारे, बोलो सौ झूठ सामण मासां कैसी बीरध जी।
जै धण म्हारी मानैं सै झूठ, पूत जणां सै थारी भावज नैं।
इब कै तै पिया म्हारे मानांगे साच, आसा[8] तै कही ए म्हारी भावज कै।

उपर्युक्त गीत में कई बातें हैं—जैसे झूलने का चाव, सास की आनाकानी, उस पर पीहर जाने की अनुमति, इसके भी न मिलने पर पुत्रवधू का आक्रोश, सास द्वारा पीहर की निन्दा, गृहकलह, पुत्र द्वारा सम्बन्ध-विच्छेद करने अथवा पीहर भेजने का सुझाव, वधुओं की दुर्लभता तथा वंशवृद्धि के कारण मां द्वारा तलाक न देने का परामर्श, भतीजा उत्पन्न होने की युक्ति के अवलम्ब द्वारा पत्नी की पीहर जाने की मनोकामना की पतिदेव द्वारा पूर्ति। यहाँ कन्या-जन्म को अशुभ माना गया है तथा पति की द्विविधाग्रस्त स्थिति भी दर्शनीय है। पारिवारिक कलह के मुख्य कारण का संकेत भी इस गीत में दिया गया है। कठोर शासन विद्रोह को जन्म देकर ही रहता है। समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह गीत अत्यन्त अनमोल सामग्री से परिपूर्ण है।

---

1. झूला। 2. वृक्ष 3. भेजना, 4. तलाक, 5. पत्नी 6. किस लिए 7. विरद या मंगलोत्सव 8. गर्भवती।

सावन मास में विवाहिताएं सुसराल की अपेक्षा अपने पीहर में जाना अधिक पसन्द करती हैं क्योंकि मां का दुलार, मनचाहा खान-पान तथा मनोरंजन की स्वतन्त्रता पीहर में ही प्राप्य है। हास-परिहास के हेतु यदि मां सुसराल से स्वयं चली आने की बात अपनी पुत्री से कहकर उसकी परीक्षा लेना चाहती है तो व्यवहारकुशल प्रौढ़ा की भांति पुत्री झट प्रत्युत्तर देती है।—

> आया री मां मेरी सामण मास, हमनें बुला लै री म्हारे बाप कै।
> जै तनैं है बेटी आवण का चा, आई तै क्यूंना है कोठ्ठे कूद कै जी।
> या सीख री मां अपणी बहुआं नें दे, या सीख म्हारे ना लागै जी।
> रांधूंगी री मां मेरी टोकणी भर खीर, बैठ जिमाऊं जी अपणा कुनबड़ाजी
> गाऊंगी री मां मेरी सामण के गीत, घरां ए मना ल्यूं अपनी तीजड़ी जी।

"खाइए त्यौहार, चालिए व्यौहार" वाली नैतिक सूझबूझ, पारिवारिक दायित्व, निर्वाह की भावना तथा सावन के गीत गाकर तीजों का पर्व मनाने के संकेत आदर्श गृहिणी पद को गौरव प्रदान करते हैं। खीर का भोजन और गीतों की झंकार. . . . .ये हैं सावन का रंग। सुसराल में मां अपनी लाडली बेटी के लिए लाड़-कोथली का उपहार भेजती है, जिसकी प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रता एवं उत्सुकतापूर्वक की जाती है। नाई अथवा भाई मां द्वारा प्रदत्त परिधान, बड़ी बहन द्वारा प्रदत्त सौभाग्य चिन्ह (चूड़ियां) तथा भावज द्वारा प्रदत्त आभूषण लेकर पहुंचता है :—

> बागां में पपीहा बोल्या, सामणियां कद[1] ल्यावैगा
> नीमां कै निबौली[2] लाग्गी, सामणियां कद आवैगा :
> मरीयो री बसंता नाई, कोथली[3] कद ल्यावैगा।
> आवैगा री आवैगा, मेरी मां का जाया आवैगा।
> मां की तील[4], बाहण का जोड़ा, बहु की झांझण[5] ल्यावैगा।

सावन के लक्षणों के व्यंजना-व्यापार, नारी-सुलभ अधीरता एवं खीझ, भ्रातृ प्रेम की आश्वस्तता[6] एवं पारिवारिक सम्बन्धों की स्निग्धता से टपकते इस भावपूर्ण गीत में भाषा शैली की कोमलता एवं कलात्मकता भी उल्लेखनीय है। झूले के गीत अथवा हिंडोरा राग भी सावन की मधुरिमा को चार चांद लगा देते हैं। मल्हार राग की तर्ज एवं लय पर आधारित ये गीत सावन के वातावरण की अनुभूति को कितना प्रगाढ़ बना देते हैं, इसे तो कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। झूले के कुछेक गीत इस प्रकार हैं :—

> (क) अगर चंदन की पाटड़ी, सब सखी झूलण जायं
> पड़ी है पिंजौली[7] निहालदे के बाग मझं।
> पहला झोट्टा[8], हे मां मेरी मैं लिया री
> रल ग्यी लौरयां[9] महूं——पड़ी है पिंजोली बाग मझं जी।
> दूजा झोट्टा चमकी बीजली जी। हां री कोय तीजे मझं पड़ी फुहार।
> चौथे झोट्टे झड़ी ए ला दई, सब भीजें खड़ी ए लार-पतार[10]।
> पड़ी है पिंजौली निहालदे के बाग मझं . . . .।
>
> (ख) बड़ बड़ डाल्हे[11] झूलती, मेरी सासड़ राणी !
> कोय सात जणीं का साथ . . . .।
> बड़ का डाल्हा टूं नै गया
> मेरी सासड़, कोय बिछड़ गया सब साथ . . .।

देखिए नादान हरियाणवी कृत हरियाणा लोकगीत संग्रह, पृष्ठ 58–59।

1. कब।
2. नीम का फल।
3. प्रेमोपहार।
4. वस्त्र परिधान
5. आभूषण विशेष।
6. आश्वासन देना
7. पेंग बढ़ाना।
8. झूले की गति।
9. हिलोरें।
10. पंक्तिबद्ध।
11. वटवृक्ष की शाखा।

और सखी सभ ऊजली[1], मेरी मिरगनैनी तूं क्यों मैले भेष . . . ।
औरां के हाकिम[2] घर रहें, म्हारा तै गया जी परदेस . . . ।
गैर पुराणे ल्यो नये, चलो जी म्हारे साथ . . . ।
डाढ़ी तो पाडूं बाप की, मूंछा तैं घालूं हाथ . . . ।
और सखी सभ व्हावड़ी[3], मेरी बहुश्रड़ रानीं नें लाई वार[4] ।
एक मुसाफिर मिल गया, झगड़े में ला दई वार । . . .

. . . .

पायां मश्रं छाले पड़ गये, नयनां, मश्रं श्रा गई नींद . . . ।

मातृ-वत्सला सास, प्रतिष्ठित ससुर, पति के तुल्य रूपाकृति सन्तान तथा पीहर-सासरे की मर्यादा-रक्षक सलज्ज नववधू की चेष्टाओं के सूक्ष्मांकन की दृष्टि से इस गीत में हरियाणा के समाज-विधान का प्रखर चित्रण सुलभ है। झूले की सामूहिकता भी ध्यान देने योग्य तथ्य है। इस परम्परागत मनोविनोद का इतिहास राजा सुलतान और रानी निहालदे की प्राचीन गाथा की ओर इंगित करता है। निहालदे यहाँ झूलने वाली कन्या मात्र का उप-लक्षण बन गया है। निम्न चित्र-ध्वनि गीत में झूलने वाली कन्याओं के बारह आभरण और सोलह शृंगार की विचित्र छटा पर मोहित होने वाले राजकुमार की लालसा का संगीतमय एवं मनोहर बिम्ब गोचर होता है :—

(1) बारिस श्राई हे मां मेरी रिमझिमी जी
श्रां री[5] हम सभ सखी झूलण जायं
पड़ी हे पिंजोली चम्पे बाग मश्रं जी . . . ।
लाख टके का हे मां मेरी बीजणां जी[6] ।
श्रां री क्रोय धर्‌या पुराणा होय
खड़ी ए में भीजूं चम्पे बाग मश्रं जी . . . ।
री पायल पड़ गई है मां मेरी बाजणीं जी . . .
श्रां री टोहवै राज्जा सुलतान
खड़ी ए में भीजूं चम्पे बाग मश्रं जी . . . ।
नौ मलक्यां[7] की हे मां मेरी नाथ[8] सै री . . . ।
श्रां री जलैं तोत्यां की तकरार . . . ।
सारी सखी रल ए मां मेरी झूलती री
श्रां री मेरै श्रोट्टै दे सुलतान . . .
खड़ी ए में भीजूं चम्पे बाग मश्रं जी ।

सावन के गीतों में काली डरावनी घटाओं के उठने और सफेद घटाओं के बरसने का ऋतु-विज्ञान सम्बन्धी उल्लेख भी है। पश्चिम से उठने वाली घटाएँ जो दूधिया अथवा तीतरपंखी रंग की होती हैं, हरियाणा में वर्षा की झड़ी लगाती हैं। 'बरसण लाग्गी रै काली बादली' में काली घटाओं के बरसने का भी उल्लेख है। किन्तु दूधिया रंग के बादल वर्षा का अचूक लक्षण सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रोषितपतिका के लिए धर्मसंकट उत्पन्न हो जाता

1. उज्ज्वल भूषा से युक्त ।
2. पतिदेव ।
3. लौट गई :
4. देरी ।
5. अरी ।
6. पंखा ।
7. हीरक खंड ।
8. नत्थ ।

है। पति दक्षिण में नौकरी के लिए प्रस्थान करता है। पत्नी सद्यः विवाहिता है, न तो उसकी गोद में और न ही अंगुली पकड़ कर साथ में चलने वाला कोई शिशु है। वह खिन्नमानस पतिव्रता हवेली के डगमगाने की अन्योक्ति के द्वारा अपनी उदासी को व्यक्त करती है[1]। अस्थिर हृदय प्राणि के लिए समस्त संसार अस्थिर हो जाता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। प्रवास विरह के गीत भी मार्मिकता की दृष्टि से कम प्रभावशाली नहीं हैं। विरहिणी के लिए तथा साधनहीन किसानों के लिए सावन-सी सुहावनी ऋतु भी कष्टदायक होती है :—

(क) सामण सामण मारु क्यें करैं, सामण के दिन च्यार।
सामण उन नैं री सुहावणा री, जिनकैं बुलद[2] अर बीज
लाल मारु सामण आया री सुहावणा . . . ।
सामण उननैं री सुहावणा , जिनकैं माई जाए बीर
लाल मारु सामण आया री सुहावणा . . . ।
सामण उन नैं री सुहावणा जिनकैं री गोरे गोरे छैल
लाल मारु सामण आया री सुहावणा . . . ।

चातक भी विरहिणी तथा विधवा के हृदय में 'पीउ-पीउ' बोलकर मानो तेल के छींटे मारता है। हरे-भरे नीम की डालों में छिपा हुआ चातक वैरी की तरह खटक रहा है :—

(क) कोय पी,...पी....पपीहा हे बैरी बोलता, कोय बोले सै पीउ-पीउ बोल . . . ।
तू मत बोलै रे पपीहा बैरी नीम मझं।
कोय सामण कै म्हीनै आवैं तीजड़ी—कोय सब कैं तीजां का चा
तू मत बोलै रे पपीहा बैरी नीम मझं।

कोय तीजां नैं चूड़ी ए सारी पहरती. . .कोय विधवा के नंगे हाथ——
तू मत बोले रे.........
कोय तीजां नैं मेंहदी ए सारी लांवती——कोय विधवा के धौलें हाथ——
तू मत बोले रे......... ।
कोय सारी सहेली हे सिंगर झूलती——कोय विधवा का मेला भेस——
तू मत बोले रे......... ।
कोय सारी सहेली हे बेब्बे गांवती——कोय विधवा तन्न बैठी उदास——
तू मत बोलै रे......... ।
कोय पीपी पपीहा बोल्या नीम मझं——कोय पी-पी-मेरे पिया का नाम——
तू मत बोलै रे......... ।

इस गीत में मानवीय सहानुभूति और करुणा का सागर भरा है। आर्त्त व्यक्ति ही पीड़ित की व्यथा के मर्म का पारखी होता है। सावन के सुखद वातावरण की सघनता एवं सर्वांगीणता के चित्रण के साथ ही लोक में उपेक्षित विधवा का हृदय मानो इस गीत में अपनी अन्तर्वेदना को चातक के स्वरों में परिस्थिति-वैषम्य के द्वारा मुखरित कर रहा हो।

शृंगार, हास-परिहास, ननद-भाभी द्वारा मिलकर चौबारे में कताई करने, सरवर पर नीर भरने, तमाशा देखने, हरे सावन में दुहेले-जलते सासरे, कौथली-सिंधारे तथा भाई-बहन के स्नेह के गीत सावन में गाए जाते हैं। विषय कोई भी हो सकता है किन्तु महत्व है सावन की बहर, लय एवं संगीत का। मल्हार राग के आलाप में जब जीवन एवं प्रकृति के सहज संगीतमय वातावरण को स्वर-बद्ध करके गाया जाता है तो सावन के गीतों की बीर-बहूटी-सी रंगत धरा-गगन को नाना प्रकार से गुंजा देती है। मेघ-गर्जन के समान, वर्षा के मन्द-मन्द तथा रिमझिमी संगीत

1. तू क्यूं हवेली वैरण डिगमगी जी
हां जी कोय धरिए धरम की नींव——थारे बीरा चाले दखण की नौकरी जी।
2. बैल।

की हिलोर-हुलास की अवतारणा के निमित्त सावन के गीतों का जन्म हुआ प्रतीत होता है। मेघ-राग और जीवन-राग का सम्मिलन ही सावनी-संगीत का केन्द्र है। मुझे लगता है कि कदाचित् कालिदास के मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित मेघदूत की लय तथा निराला के बादल-गीतों की बहर पर भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अथवा चेतन-अचेतन रूप में सावन के प्राकृतिक मेघ-संगीत का प्रभाव यत्किंचित् मात्रा में अवश्य पड़ा होगा। मन की एक गुदगुदी एवं विशिष्ट तरंग के स्वर-स्पन्दन का गहन नाद सावन का प्रतीक विदित होता है। यह स्वर प्रवाह अपेक्षाकृत शान्त एवं तबले की गुरु गंभीर ध्वनि-सा होता है। मेरा सुझाव है कि रवीन्द्र-संगीत के समान सावन-संगीत की भी खोज की जानी अपेक्षित है।

2. फागुन के गीत

फागुन के गीत वस्तुतः होली के पर्व के उपक्रम की सूचना प्रदान करते हैं तथा होली के सघन एवं मादक वातावरण की रचना करने और उसे गहराने का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, सौन्दर्य तथा आल्हाद की हवा-तवा एवं गतिशील प्रकृति के रोम-रोम से जो आनन्द की लहरियाँ उठा करती हैं उन्हें मनुष्यों के भीतर भावों के रूप में उद्दीप्त करने का सहज कार्य इन गीतों के द्वारा सम्पन्न होता है। यदि सावन के गीत ग्रीष्म की मूर्च्छा को जीवन से भगाते हैं तो फागुन के गीत हेमन्त-शिशिर द्वारा जनित शारीरिक जड़ता को स्फूर्ति में परिणत कर के अंग-संचालन की प्रेरणा प्रदान करते हैं। समीर की मादकता और सूर्य की शीतोष्ण किरणें मानव-हृदय को चंचल बना देती हैं। तितलियों का नाच, भ्रमरों की मंजुल ध्वनि और वन-बागों की पुष्प-छटा को देखकर कौन निश्चेष्ट रह सकता है! सावनी गीतों में जहाँ संगीत की प्रधानता होती है, वहाँ फागुन और होली के गीतों में नृत्य एवं नाटकीयता की गति प्रबल रहती है। सावन का संगीत सम-सुर, मन्द-मन्द और गहन होता है—समतल भूमि में बहने वाली नदी के सदृश। किन्तु फाग के गीतों में निर्झर की तीव्र-धारा के समान, विषमता, प्रवेगशीलता, नाना प्रकार की विचित्र ध्वनियों का निनाद तथा उनकी परिवर्तनशीलता में अवरोह की अपेक्षा सुरों का आरोह अधिक रहता है। वसन्त में तो कोकिल भी पंचम-स्वर में गाती है तो मानव-समाज षष्ठम् एवं सप्तम् सुर से नीचे क्यों रहता? सावनी-गीत तो बैठक और चरखा-ध्वनि के गीत हैं जबकि फाग के गीत दौड़धूप वाले, नाट्य एवं अनुकृति की दृश्य-योजना से गर्भित होते हैं। यहाँ गीत के भाव को नर्तकी अपनी चेष्टाओं तथा हाव-भाव के प्रदर्शन द्वारा व्यंजित करती है। सामूहिक नृत्य के साथ गाए जाने वाले धमार राग की फाग में भरमार होती है, क्योंकि फाग एक लीला है। हाँ, होली के गीतों की अपेक्षा सावनी गीतों में सुरीलापन अधिक होता है। विषय-वस्तु दोनों की लगभग समान है। इन गीतों में बड़ा अन्तर यही प्रतीत होता है कि इनमें भावव्यंजना की शैलियाँ भिन्न-भिन्न हैं।

होली के नृत्य-गीतों का विषय की दृष्टि से वर्गीकरण करने पर पता चलता है कि ये गीत पाँच प्रकार के हैं :—सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, शृंगारिक तथा प्रकृति-विषयक। शैली की दृष्टि से ये गीत मौखिक अथवा अभिनयरहित, नृत्यगीत तथा नाट्यगीत आदि कोटियों में रखे जा सकते हैं। इन तीनों प्रकार के गीतों का विषय कुछ भी संभव है—समाज, परिवार, प्रकृति तथा शृंगार से सम्बन्धित। चूँकि यहाँ कल्पना शृंगारिक होती है और व्यंग्य-विनोद का लक्ष्य शृंगारमूलक रहता है, अतः कल्पना-प्रसूत गीतों को शृंगारिक के भीतर ही माना जाना चाहिए। सामाजिक गीत ये इस हेतु माने गए हैं कि वस्तुतः प्रत्येक लोकगीत की अनुभूति सामाजिक संदर्भ से उत्पन्न होती है तथा उसमें वैयक्तिकता की अपेक्षा सामूहिक हर्ष-विषाद से सम्पृक्त नाना सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से छाई रहती है। वैसे भी ये सामूहिक मनोरंजन के लिए रचित समूह-गान हैं तथा उपेक्षिततम एवं दलित व्यक्तियों की वाणी का स्वर इनमें व्याजोक्ति एवं अन्योक्ति शैली द्वारा खेल-खिलवाड़ में दिए गए उपालम्भ गीतों में समाविष्ट कर लिया जाता है। अतः इनमें जीवन की प्रखर उलझनों को व्यक्त करने के माध्यम की भी अपूर्व क्षमता है। यही कारण है कि लगभग समाज के प्रत्येक वर्ग एवं उपवर्ग की आशा-आकांक्षा तथा समस्याओं का बिम्ब इनमें दर्शनीय है। धार्मिकता इनमें उपलब्ध है—क्योंकि, होलिका-दहन का प्रसंग अधर्म की पराजय तथा धर्म की जय पर आधारित है और इसमें पूजन-भजन की परम्परा विद्यमान है। पुनः हिन्दू धर्म में सामाजिक व्यवस्था धर्ममूल पर ही आश्रित मानी गई है। यहाँ धर्म के अंकुश से बचा ही क्या है? धर्मानुशासन से वंचित होलिकोत्सव एवं फाग-लीला अन्यथा कोरे विलास से विपाक्त होकर समाज में विभेद का पुटपाक बिखरा देती।

---

1. विस्तृत विवरण के लिए देखिए सप्तसिन्धु, जनवरी, 1968 के अंक में लेखक का 'हरियाणा के होलीगीतों' का समाजशास्त्रीय तथा कला-सौंदर्यमूलक अध्ययन' नामक शोध लेख।

प्राकृतिक चित्रण इन गीतों में कहीं-कहीं उद्दीपन रूप में हुआ है कारण, प्राकृतिक सुषमा, ग्रामीणों के लिए मात्र वर्णन की वस्तु नहीं है, बल्कि वह उनकी चिर-परिचिता अभिन्न सहचरी बन जाती है। प्रकृति के भीतर वे बसते हैं और उनके भीतर प्रकृति का आवास है ; फिर वर्णन किसका और कैसा ? ऐसे गीतों की नृत्य-संगत बानगियां प्रस्तुत हैं :—

(क) अहा रे लाला ! फागण आया, रंग भरे—रे लाला !
एक ससुर दो बहू घर दोनों पाणीं नें जां
अहा रे लाला ! आगली का बिछुआ ढह पड़्या
.........पाछली नें लिया उठाय .... ।

(ख) काच्ची इमली गदराई......साम्मण मश्र ।
बुड़िया लुगाई मस्ताई.....फाग्गण मश्र ।

(ग) दिल्ली तेरें गोरें रे खड़्या चणे का खेत ।
जमना जी के कांठे पै खड़्या गीहूं का खेत । [अज्ञात]

इन गीतों की 'इमली' में लक्षणा है। यह नवीनाओं, नववधुओं तथा किशोरियों की रूप-माधुरी की ओर संकेत करती है। चने और गेहूं से भरे खेत तथा यमुना तट की निर्मल जलधारा का प्रवाह बसन्त-बहार की मादकता के प्रतीक हैं। नृत्य के साथ इन गीतों का अभिनय फाग-लीला का एक अनुपम दृश्य प्रस्तुत करता है।

होली-गीतों में शृंगारिक उपालम्भ-गीत भी अनेक हैं। पति, फाग और चन्द्रिका को उपालम्भ देने वाले कतिपय विप्रलंभ शृंगार के नृत्य गीत मिलते हैं ; यथा :—

जब[1] साजन ए परदेस गए, मस्तान्नां फाग्गण क्यूं आया ।
जब सारा फाग्गण बीत गया, तैं[2] घर मश्र[3] साजन क्यूं आया ।
छम-छम नाचें सब नरनारी, मैं क्यूं बैठी दुखां की मारी
मेरे मन में जब मचा अंधेर, तैं चान्द का चांदण क्यूं आया ।
इब पीया आया, जी खिल्या नां, जब जी आया पी मिल्या नां
साजन बिन-जोबन क्यूं आया, जोबन बिन-साजन क्यूं आया ।
मन की तैं अरथी बंधी पड़्यी, आख्यां मश्र लाग्गी हाय झड़ी ।
जब मेरे मन का फल सूक्या[4], लजमार्‌या फाग्गण क्यूं आया ।

ससुराल सम्बन्धी उपालंभ वाले तथा भाई-बहन के स्नेह की व्यंजना करने वाले नृत्य गीतों की भी भरमार है। समधिन के प्रति उपालंभ वाले मां-बेटी के गीत, रोचक एवं सजीव संवादों की शैली में, नृत्य एवं नाट्य का विषय बनते हैं। व्यंग्य-विनोद के समुचित अवसर का लाभ उठाकर मां तथा भाई के समक्ष ससुराल की दारुण-कथा का बखान मार्मिक शब्दावली में किया जाता है, जैसे —

(क) घोड़ी खुर बाजें रे बीर, बण में बाजी रे बांसली ।[5]
मेरी मां नें रे कहिए बीर, मेरा चूंदड़[6] रे लै धरें ।

---

1. ज् के साथ य—का आनुषंगिक उच्चारण होने से 'ज्यब' रूप बोला जाता है।
2. तो,
3. महँ में से हकार का लोप, भीतर अर्थ है।
4. सूख गया ।
5. हरियाणवी में ल तथा मूर्धन्य ल दोनों मिलते हैं, अर्थ है—बांसुरी ।
6. चुनरी ।

मेरी चूंदड़ पाट्यी रै बीर, इनकै घूंघट कै काढ़तै ।[1]

(ख) बेटी-सास मेरी नै[2] दाणे[3] भून्ने, खील्लां[4] चुग ली आप ।
मां —मेरी क्यूं रोड़्य[5] जोग्गी[6] थी ?......... ।
बेटी-सास मेरी नै हेल्ली[7] लेली
मां—मेरी क्यूं झूंफड़ी[8] जोग्गी थी ?

ससुराल के अत्याचारों का वर्णन सावनी गीतों में भी है। किन्तु यहां उपालंभ-शैली का आश्रय ग्रहण किया गया है। सहोदर भ्राता और माता का उल्लेख बहन एवं पुत्री के रक्षक के रूप में उपलब्ध है। लोकगीतों में सास के 'बॉसिज्म' का भाव आवश्यकता से कहीं अधिक लक्षित होता है। वह सचमुच शोषक सत्ता है । वधू उसकी दृष्टि में एक क्रीत-दासी है । गौरियां फागुन में ही खरी-खरी कह कर अपने मन की भड़ास निकाल पाती हैं। लोक-कवियों ने ठीक ही कहा है और सावन में सुता ने माता को सम्बोधित कर कहा है--"बड़ा हे दुहेला, हे मां मेरी सासरा जी ।" फागुन के गीतों में मातृ-संबोधन के स्थान पर प्राय: भ्रातृ-संबोधन अधिक है ; यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है । इसके कारण का ज्ञान, मुझे तो, हो नहीं सका ।

मुख्यत: नृत्य के दो भेद कहे गए हैं–लास्य और तांडव । नारियों द्वारा मधुर, कोमल एवं श्रृंगारिक भावों के प्रदर्शन को लास्य तथा पुरुषों द्वारा उद्धत एवं प्रचंड रीति से किए गये ओज-प्रधान नृत्य को तांडव नृत्य कहते हैं। वीर और भयानक रसोपयुक्त वस्तु से ही तांडव का विकास हुआ ? पुरुषों द्वारा किया जाने वाला दंड, सर्प एवं बाहुमूल-कुक्षि वाद्य नृत्य जो रात्रि में किया जाता था और तांडव-कोटि का था ; अब दो दशाब्दियों से विलुप्त-प्राय: हो गया है और हरियाणा में देखने को नहीं मिलता । राग-रागनियों के साथ यह प्रचलित था । महिलाओं के लकुट रास अथवा लास्य के विभिन्न प्रकार अब भी प्रचलित हैं। अंगों के संचालन के द्वारा एक साथ ही विभिन्न मुद्राओं एवं गतियों की सहायता से जो शारीरिक चेष्टाएँ प्रदर्शित की जाती हैं, उन्हें शास्त्रीय भाषा में 'करण' कहा गया है। नृत्त करण प्रधान होता है और जब करण की संख्या छ: से नौ तक रहती है तो नृत्त अंगहार कोटि का हो जाता है और इसके साथ रेचक की संगति होती है। रेचक के चार मुख्य भेद हैं—पादरेचक, कटिरेचक, कररेचक और कंठरेचक[9]। इनमें पाद, कटि, कर और कंठ का क्रमश: चलाना, मोड़ना, उलटना तथा स्खलित करना आदि प्रक्रियाएँ दिखाई जाती हैं । फाग के गीतों की इस दृष्टि से समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि यदि एक ही गीत में आरम्भ में पादरेचक है तो बाद में कंठरेचक की संगति भी द्रष्टव्य है ; उदाहरणत :—

(क) मां ढकणी[10] री ले कै, मैं आग[11] नैं गई
एक मां, बाबा[12] नैं धूणां[13] रचाया, मेरी माई

---

1. निकालते ।
2. ने ।
3. अन्न के दाने, प्राय: हरियाणवी में न के स्थान पर ण पाया जाता है ।
4. खिले हुए दाने ।
5. अनभुने ।
6. योग्य ।
7. हवेली, दीर्घ स्वरों के मध्यस्थ व्यंजन की अर्धमात्रा बढ़ जाती है—यथा, जोग्गी, खील्लां, भून्ने बाव्वा, सौस्सा, कसीद्दा इत्यादि ।
8. झोंपड़ी ।
9. भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र 4/267—270 तथा धनंजय कृत दशरूपक 1/9, 41-42 :
10. ढक्कन ।
11. य-श्रुति संज्ञाओं में भी है —आग्य (अग्नि) ।
12. नाथपंथी योगी ।
13. धूनी ।

एक मां एकेक मन मग्रं मेरी इसी-इसी आई — पादरेचक
मां हो ल्यूं मोडिया की साथ, री मेरी माई

.. ..

एक मां खातियां कै जाइए, कठपूतला घड़ाइए
ए मां काठ कै कठपूतले का दामण सिमाइए
एक मां लोलगर कै जाइए, उसका चूंदडा रंगाइए — कंठरेचक
ए मां काठ के कठपूतले नैं, बहल मग्रं बठाइए

.. ..

ए मां काठ के कठपूतले की सेज बिछाई
ए मां टस्-टस् रोवें तेरा लाडला जमाई।

(क) मायड़ मेरी कड़्य[1] मग्रं री दरद सैं
ए लाड्डो मेरी, तेरे क्यां हे का दरद सैं
मायड़ मेरी, मेरे बीड़ं[2] का दरद सैं — कटिरेचक
लाड्डो री, तेरे, सुसरे नैं बुला द्यूं
मायड़ री, ओह तैं सुसर री, क्यैं बुड्ढा ?

सपत्नी अभियोग के नाट्यगीत भी मिलते हैं। नृत्तगीतों तथा नृत्यगीतों को कुशल अभिनय के द्वारा रसावस्था तक लाकर उन्हें नाट्य गीतों में अथवा अभिनय-कौशल के अभाव में व्यतिक्रमत: परिणत किया जा सकता है। निम्न-गीत में कररेचक की संगति पादरेचक के साथ बैठाई गई है :—

(ग) अहा रे लाला ; फागण आया, रंग भरे रे लाला
एक ससुर घर दो बहू; दोनों ए पाणीं[3] नैं जां — कररेचक
अहा रे लाला ! आगली का बिछुआ ढह[4] पड़्या
आहा रे लाला ! पाछली नैं लिया उठाय — पादरेचक
लड़ती लड़ती बे गई, रे लाला ! हां गई ससुर दरबार

.. ..

इस सुन्दर नाट्यगीत में न्यायाधिकरण का दृश्य (Court Scene) अभिनीत किया गया है और न्याय की निष्पक्षता पर व्यंग्य के छींटे फेंके गए हैं। अन्त में न्याय का पलड़ा पुत्रवती तथा सम्पन्न पितृकुला के पक्ष में झुक जाता है। यह है न्याय का लोक-विधान ! लनिहार-गीत का नाट्य भी बड़ा कलात्मक एवं मार्मिक बन पड़ा है। जामाता के आगमन का संदेश, अतिथि-सेवा और कन्या-विदा के दृश्यों का संयोजन उसमें किया जाता है :—

(घ) नंणद भावज हम कात[5] रह्यी री
बोल्या मंडेरे पै काग, भावज ! आज आवैं कोये री
बाजणीं सी बहली[6] री नंणद ठाढ़े ठाढ़े नारे[7]।
बड़ा हे जेठ लणींहार[8], मायड़ मेरी, मैं नहीं जांगी

.. ..

मायड़ तो हे मेरी, थाल परोसै, बीरा जिमावै डोल्य[9]

---

1. कमर,
2. पेट का दर्द,
3. पनघट
4. गिर पड़ा,
5. कातना।
6. छोटा झंकार वाला रथ,
7. पुष्ट बैल।
8. ले जाने वाला पुरुष।
9. व्यजन-पंखा डुलाना, ढोल पाठांतर है।

बहियां पसार मेरी मायड़ मिल्यी डब डब भर आए नैण[1]
सास नंणद मेरी तारण आई, मुड़ मुड़ दाबै पां[2]
मायड़ मेरी, मैं नहीं जांगी ....।

होली के इस गीत में हरियाणा की लोक संस्कृति के कुछ पक्षों का नितान्त सांगोपांग एवं सुगठित बिम्ब प्रदान किया गया है। कन्या-बिदा के इतने हृदयस्पर्शी चित्र, इतने कम शब्दों में, शिष्ट-साहित्य में भी प्रायः दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त फागन में देवर-भाभी के रंग क्रीड़ा गीत[3], कंटक-पीड़ा गीत[4], सास के प्रति आभूषण अनुरोध के गीत तथा प्रख्यात झमुका-गीत गाए जाते हैं। फाग के मीठे मौसम की मादकता को कलात्मक एवं उपयोगी क्षणों में बदलने के लिए इसे चरखे जैसे लघुयंत्र तथा कसीदा एवं फुलकारी जैसी सुन्दर कलाओं से सम्बद्ध कर दिया गया है। होली से पूर्व तथा पश्चात् महिलाओं का यातायात जोर-शोर से शुरू हो जाता है । कोई पीहर से आ रही है तो कोई सुसराल जा रही है। तिथि-निश्चय करने की यह परम्परा आजकल भी प्रचलित है और इसे 'ठीक करना' कहा जाता है। गौने (मुकलावा) और दूसरे-तीसरे प्रस्थान के लिए तील-तागा अथवा वेशभूषा जुटाना और सुई तथा रंगीन धागों की कला से अपने भावी-जीवन के स्वप्नों को मोर-मोरनी, अश्व-गौ, हिरन-चिड़िया आदि के रूप में बड़ी उत्सुकतापूर्वक टाँका जाता है। चरखे पर गाए जाने वाले गीत 'सरांतियां' कहलाते हैं । जिसका पद-विन्यास है..सारी..रतियां अर्थात् रात-भर गेय गीत । चरखा कुटीर उद्योग का एक लघुयंत्र होते हुए भी महाफल एवं क्रांति का प्रवर्तक है । इन गीतों के आरंभिक अंश यहां उद्धृत हैं :—

(क) बारहा म्हीन्नां चरखा फेर्या, बारहा बाग लगाया सै
रै मोधुड़ा आया चाहै ! ....।

(ख) रै चूंदड़ी तेरा जुलम[5] कसीदा
कुंण[6] सै म्हीने बोल्यै मोर-पपीहूया, कब सी चिमकै सीसा रै....।
साम्मण म्हीनें बोल्यैं मोर पपैहूया फाग्गण चिमकै सीसा रै...।
कुंण सी नंणद नैं काढ्या कसीदा, कुंण सी नैं गोंद्या सीसा।

कसीदा और फुलकारी की कलाओं के गीतों के साथ ही बीणा-गीत भी मिलता है, जिसमें सपेरा-नृत्य की संगत रहती है । वस्तुतः यह सपेरा-नाट्य है । इस गीत में एक सपेरे द्वारा बीणा-वादन के कौशल से अभिभूत मुग्धा पुनः-पुनः उससे बीणा बजाने तथा उसके साथ चलने का आग्रह करती है । इस अभिनय में दो पात्र होते हैं— बीन बजाता हुआ सपेरा तथा यौवन-नदी की तरंगों पर नाचती-गाती हुई ग्रामीणा । संभाषण-शैली में रचित यह दोगाना इस प्रकार है :—

(ग) सपेल्ले बीन बजा दे हो, चालूंगी तेरे साथ ...।
महलां के रहण आली[7], रे तनैं झूंफड़ी लगै उदास...।
झूंफड़ी मश्रं गुजर करूंगी, हो चालूंगी तेरे साथ ...।
.. ..
पलंगां पै सोवण आली, रै तनैं गुदड़ी लागै उदास ...।
गुदड़ी मश्रं गुजर करूंगी, हो चालूंगी तेरे साथ ...।

1. नैन,
2. चरण-सेवा,
3. लीया देवर रंग घोल कै, खेलांगे होली आज,
4. देवर कांट्टा, काढ़िए हो, एड्डी टिकती नां पैर
दरद नैं मारी लहरबे आली नार्य।
5. अति सुन्दर।
6. कौन।
7. वाली।

वीणा का नाद सुनने के लिए कितनी सुखद प्रवंचना में, इस किशोरी ने बेचारे भोले नाथ को डाल दिया है। साँपों को नचाने वाले को नचा दिया है न ! फाग के गीतों में ही फाग-लीला की महिमा पर भी प्रकाश डाला गया है। फाग-लीला मूलतः वसन्तोत्सव एवं मदनोत्सव का ही लोक संस्करण प्रतीत होता है। इसका नाम है—मधुमास। मन की प्रवृत्ति शृंगारिक हो जाती है। प्रकृति का शृंगार मानव के मन को तरंगित करके उसे उज्ज्वल रस में सराबोर कर देता है। तभी तो कहा गया है :—

फागण के दिन चार, री सजनी, फागण के दिन चार ।
मद जोबन आया फागण मश्रं, फागण आया जोबन मश्रं ।

झाल[1] उठें सैं मेरे मन मश्रं, जिनका वार न पार । री सजनी. . . .
प्यार का चन्दन महकण लाग्या गात का जोबण रुकण लाग्या
मस्तानां मन बहकण लाग्या, प्यार करण नैं प्यार । री सजनी
. . .
चंदा पोंहच्या आण सिखर मश्रं, हिरणी[2] जा पोंहची अम्बर मश्रं
सून्नी सैज पड़ी सै घर मश्रं, साजन करैं तकरार । . . री सजनी ।।

होलिका का पर्व कालान्तर में धार्मिक की अपेक्षा सामाजिक मनोरंजन का केन्द्र बनता गया और हिन्दू-मुस्लिम सभी रंग खेल कर इसे खुशी से मनाने लगे थे। मराठा–महिलाओं के साथ नवाबों के होली खेलने की साक्षी भी हमें एक गीत में प्राप्त हुई है और इस गीत का रचना-काल हमें पानीपत की तीसरी लड़ाई के बाद के कुछ वर्षों का लगता है, जबकि मराठों की पराजय के बाद मराठा-मुस्लिम संघर्ष समाप्त हो गया था।

3. बारहमासिया गीत

यदि षड्ऋतु-वर्णन संस्कृत साहित्य की काव्य-परम्परा की विशेषता रही है, तो लोक साहित्य में बारहमासा वर्णन की परम्परा मिलती है। अपभ्रंश[3] तथा रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में भी बारहमासा वर्णन की परिपाटी को विशिष्ट स्थान दिया गया है। जायसी के पदमावत में बारहमासा-वर्णन और षड्ऋतु-वर्णन दोनों साथ-साथ आए हैं। इसे लोकतत्व का प्रभाव ही कहा जा सकता है। हरियाणा के श्रावणी गीतों में भी बारहमासा-वर्णन लक्षित होता है, जिसे 'बारहमासिया' के नाम से अभिहित किया जाता है। दो बारहमासिया अब तक मेरी दृष्टि में आए हैं। मैं इस ओर अधिक ध्यान भी अब तक दे नहीं सका हूँ। एक बारहमासिया में पंक्तियों की संख्या भी बारह है और दूसरे में चवालीस है। संक्षेपतः यहाँ बारह महीनों का गोरखधंधा वर्णित होता है। दोनों का आरम्भ चैत्र मास से होकर अन्त फागुन में होता है। ये दोनों बारहमासे सम्बोधन-गीत (Ode) हैं। एक में पुत्री अपनी माता के सामने प्रत्येक मास की ऋतुगत एवं पर्वगत विशेषताओं की ओर संकेत कर रही है और दूसरे में अपने सुए के सामने एक प्रोषितपतिका अपने जीवन-व्यापार की शून्यता की चर्चा करके उससे पति का संदेश मंगाने के लिए तरस रही है। यह बारहमासा संभाषण-शैली में है। जायसी के बारहमासा वर्णन में नागमती स्वयं वक्ता-श्रोता है। वहाँ स्मृति का आश्रय लेकर विरह-वेदना को प्राकृतिक विषमता तथा दैनिक जीवन-व्यापार के सन्दर्भ में जनित विवशता द्वारा मार्मिकता प्रदान की गई है। वर्णन में अभिधा की प्रधानता है। संभाषण शैली नहीं है। हरियाणा के बारहमासियों में विरह व्यंग्य है। विरहिणी पति के प्रवासी होने के कारण जीवन के चाव-भाव को पूरा करने में असमर्थ है। काश ! कि उसके पतिदेव गृह में होते :—

(क) चैत मश्रं, री मां मेरी, लामणी हों,
बैसाखी केसू री बैरी रंग भर्या जी !

---

1. तरंग।
2. नक्षत्र-विशेष का उदित होना।
3. वहाब कृत बारहमासा, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक 4 (2026 वि.) तथा अब्दुल रहमान कृत संदेश-रासक।

जेठ मग्रं, री मां मेरी, कड़केंगी लू
साढ़ मग्रं बरसै, री मां मेरी, राम जी री !
सामण मग्रं, री मां मेरी, आवेंगी तीज,
भादुए मग्रं, आवै सलौणे जोर की री !
आसौजी, री मां मेरी, देवता का हो,
कातक मग्रं, लाम्बी री नाली बाजरा जी ।
मंगसिर मग्रं, री मां मेरी, जाड्डा आज्या,
पोहज मग्रं, जाड्डा री, बैरी जोर का ।
माहज मग्रं, महाजन लोग,
फागण मैं, फगवा खेलै री कामनी ।

जायसी तथा हरियाणवी बारहमासिया की विषय-वस्तु में अद्भुत साम्य प्रतीत होता है । दूसरे में भाव यह है कि सभी मास सुहावने होते हैं, यदि घर पर प्रियतम हों[1] । उन्हीं के साथ पर्व-त्यौहार मनानें, कृषि कार्य करने, पूजास्नानादि करने में आनन्द मिलता है। वर्ष-भर का प्रवास असह्य है। हे सुए, यदि तुम 'कुभाखा' बोलेंगे तो मैं तुम्हें क्षमा नहीं करूँगी ।

4. पर्वोत्सवों से सम्बन्धित गीत

पर्वों से सम्बन्धित गीत तीज से आरम्भ होते हैं और श्रावण के गीतों में तीजों के झूला-गीतों का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं । तत्पश्चात् भाद्रपद में कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता है। महिलाएँ इस पुण्यावसर पर व्रतोपवास रखती हैं, सत्संग तथा भजन करती हैं। बालकृष्ण को पालने में झुलाया जाता है और मन्दिरों में चन्द्रोदय तक कीर्तन चलता रहता है । देवकी-यशोदा की भेंट विषयक गीत भी प्रचलित है ।[2] जन्माष्टमी के अगले दिन 'गूगा-नवमी' का मेला भरता है। ग्रामों में ढोल बजते हैं और मल्लयुद्ध के दंगल होते हैं। गूगा जैसे वीर महापुरुष की स्मृति में इससे उपयुक्त और क्या श्रद्धांजलि हो सकती है । गूगा को जाहरपीर, गुरुगूगा, बागड़वाला अथवा गूगापीर आदि नामों से हिन्दू-मुस्लिमों द्वारा श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। यह वीर नारी-मर्यादा तथा निर्बल का रक्षक एवं गोरक्षक मातृ-पूजक वीर था । नवमी की रात्रि को रतजगा होता है और गूगा-स्तवन के निमित्त गीत गाए जाते हैं। के. टैम्पल महोदय ने गूगा को हिन्दू चौहान राजपूत तथा महमूद गजनवी के विरुद्ध लड़ने वाला वीर-योद्धा बताया है[3]। ये गीत हिसार-सिरसा से आगे बीकानेर तक गाए जाते हैं। हरियाणा के अन्य भागों में भी भिन्न-भिन्न गीत गूगा के विषय में उपलब्ध हैं :—

(क) लीला सा घोड़ा, गोरा गाभरू, धरती में गया समाय,
जा राणां एक वर घर आ । . . . ।

(ख) और रूंख सब सूक गए, तू क्यों हरियाली जाल[4],
वारी मेरे जाहिर मिल रहियां । . . . ।

आश्विन में सांझी को भित्तियों पर प्रतिष्ठित किया जाता है। सांझी एक देवी है, कदाचित् दुर्गा का रूप । इसीलिए किशोरियाँ और कुमारियाँ सांझी को मातृ रूप में पूजती हैं। कुमारियाँ इस व्रत को विवाह-पर्यन्त निभाती

---

1. चेतज मास सुहावणां सुआरे, रे सुआ, जै घर हों हर के लाल,
लै लामणी करांवती सुआ रे . . . ।
2. जल भरण देवकी जाय, दशोदा रस्ते मग्रं मिली हरे ॥
3. द् लीजेंड्स ऑफ पंजाब, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 121 ॥
4. मरुभूमि का एक पेड़ ।

हैं। प्रातः-सायं सांझी देवी की धूप-दीप-नैवेद्य के साथ गीत गाकर आरती उतारी जाती है।[1] भित्तिका पर मृण्मूर्ति को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर उसके लिए चन्दे के रूप में अन्न और कपास एकत्र की जाती है।[2] नवरात्रों तक पूजा-विधान और विजयादशमी को सांझी एक हंडिया में डाल कर, सदीप सरोवर में प्रवाहित की जाती है।

कार्तिक मास में प्रातः स्नान का बड़ा माहात्म्य माना जाता है। विशेषतः कुमारियाँ योग्य वर पाने की अभिलाषा से प्रभाती वेला में राम-कृष्ण के भक्ति-गीत गाती हुई सर-सरिताओं में स्नानार्थ जाती हैं। विवाहिताएँ सौभाग्य-संमत्व की वृद्धि के लिए शीतल जल में पहर के तड़के (ब्रह्म-मुहूर्त) प्रवेश करती हैं। इस स्नान की पूर्णाहुति पूर्णिमा के अवसर पर गंगा-स्नान द्वारा होती है। कन्या अपने पिताजी तथा परिजनों से स्नानार्थ अनुमति चाहती है :—

(क) पिरस बैठंता[3] अपना बाबल बूझ्या, कहो तो कात्तक न्हा ल्यूं हो राम
कात्तक न्हांणां बेटी बड़ा ए दुहेल्ला, लाइयो बाग-बगीचे हो राम।....

गंगा-स्नान के विषय में एक हास्यपूर्ण व्यंग्य चित्र भी द्रष्टव्य है—

(ख) मनैं तो पिया गंगा न्हवा दे, जा रही सै संसार, हां ए जा रही सै संसार।
तन्ने तो गोरी क्यूकर न्हवाद्यूं, हाथ्थल पड़ी ए भैंस हां हाथ्थल पड़ी ए भैंस।
एक जतन पिया मैं बतला द्यूं।....

'हे री कोय राम मिले भगवान' की टेक वाले गीतों का स्नान-गीतों में बाहुल्य है। इन गीतों में प्रभाती, हरजस और भजनों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें धार्मिक वातावरण का गहरा रंग छाया रहता है। करवा चौथ तथा अहोई आठें के व्रतों पर धर्मकथाओं का पाठ किया जाता है। देवठनी ग्यास (देवोत्थान एकादशी) के गीत भी गाए जाते हैं। गाँव के गोपाल पुत्रोत्सव तथा विवाहोत्सव वाले लोगों के घर जा कर निम्न गीत गाते हैं :—

गोई गोई गोई रे, भैंस काटड़ा गोई रे,
राजा जाए मढ़ी मझं सोया, राणीं आय जगाया रे।....।

इसके पश्चात् होलिकोत्सव आता है, जिसमें नृत्य-नाट्य से युक्त गीतों की बौछार-सी आ जाती है।

धार्मिक पर्वोत्सवों से सम्बन्धित गीतों के अतिरिक्त सामाजिक एवं पारिवारिक पर्वोत्सव विषयक गीत भी प्रचुर मात्रा में गाए जाते हैं। पारिवारिक गीतों में पुत्र-जन्म तथा छठी के उत्सव पर विविध प्रकार के दोहद-गीत[4] (ओजणे), हनुमान का गीत तथा कुलदेवता के गीतों का रिवाज है। पुत्र-जन्म की खुशी में जो गीतों के निर्झर स्त्रियों के मधुर कंठ से फूट पड़ते हैं, उन्हें हरियाणा में 'स्यावड़ के गीत, दाई, बिहाई अथवा होलड़' कहा जाता है। इन गीतों में पुत्र-कामना, नेग-याचना, माता की अभिलाषा और आनन्द-बधावा के भावों का प्राधान्य रहता है। बच्चे से सम्बन्धित गीतों में टोपी, कठला, तगड़ी, झुनझुना, पालना आदि के गीत प्रमुख हैं। ये गीत वात्सल्य-रस से परिपूर्ण हृदय की उपज हैं। कदाचित् सूरदास जैसे कवि को भी बाल-कृष्ण के लीला-गानों की सहज प्रेरणा इन्हीं ग्राम-गीतों की गूँज से मिली हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। दोनों के भाव-साम्य से इस धारणा को और भी सुदृढ़ आधार मिलता है। इन गीतों में राम-कृष्ण जन्म[5] तथा वन में लवकुश-जन्म[6] के अत्यन्त

---

1. आरता हे आरता, सांझी माई आरता, आरते की फूल झबेलन बेल, इतने से भाइयां मझं कुंण सा गोरा। चंदा गोरा सूरज गोरा, गोरा के नयन काजल भरगे रे।
2. हे मेरी सांझी तेरी, चम्पा फूली आंगी, कुरबान सांझी...।
3. चौपाल में बैठा हुआ।
4. जी पहला मास जै लागिया, दूध दही मन जाय, मेरे अंगना में अमला बो दिया।
.. ..
नौवां मास जै लागिया, मेरा, होलड़ सबद सुणाय, मेरे अंगना.....।
5. सिरी किरसन नै जनम लीया मामा की जेलों में।....।
6. सिया मन मझं रह्यी घबराय, लव कुस बण मझं हुए।....।

करुण एवं मार्मिक गीत भी सुनाई देते हैं।

उत्सव-सम्बन्धी गीतों के संदर्भ में, शास्त्रीय एवं लोकाचार के नाना जटिल विधि-विधानों से सम्बन्धित विवाह-गीतों को दो वर्गों में रखकर उन्हें 'बनड़ा' तथा 'बनड़ी' की संज्ञा हरियाणा-वासियों ने दी है। संख्या तथा महत्व की दृष्टि से ये गीत सावनी और फागनी गीतों से किसी भी प्रकार कम सरस, विविध तथा सजीव नहीं हैं। विवाह की विधियों के चित्रण की दृष्टि से भी ये कम आकर्षक एवं रंगीन नहीं हैं। सगाई, लग्न, भात,[1] घुड़चढ़ी, विवाह आदि के गीत कन्यापक्ष तथा वरपक्ष दोनों की ओर गाए जाते हैं। नरसी भगत द्वारा हरनंदी के भात भरने का एक बड़ा-सा प्रबन्ध-गीत विशेष प्रचलित है। ये गीत व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास तथा गाली-गलौज से भरे रहते हैं। पारिवारिक सम्बन्धों की घनिष्ठता एवं स्निग्धता की चरम सीमा का निदर्शन भी इनमें लक्षित होता है। वस्तुतः लोक-हृदय की रागात्मक संवेदना का अक्षय स्रोत इनमें से बह निकला है। विवाह-गीतों के मध्य में विराम के लिए जकड़ियाँ गाई जाती हैं।[2] इसमें अद्भुत, विस्मय, हास्य, मौन-संकेत आदि भावों का वर्णन रहता है।

शृंगार रस से पूर्ण विरह-मिलन के गीत

साहित्य की भांति लोकगीतों में भी शृंगार को रसराज की मान्यता प्राप्त है। हरियाणा के लोकगीत शृंगार रस के अनेक संदर्भों से भरे पड़े हैं। गाथाओं में सुलभ प्रेम-व्यंजना के प्रसंगों के अतिरिक्त सावन, फाग, विवाह और पुत्रजन्म के गीतों से शृंगार की सरसता टपकती है। स्यावड़-होलड़, छन, सीठणे तथा गाली-गीतों में शृंगार की धूम मिलती है। इन गीतों में शृंगार-वर्णन प्रतीक-शैली में मिलता है, जिससे इनकी अश्लीलता प्रच्छन्न रहती है। शृंगार के दोनों पक्षों में से प्रधानता विरह-वियोग की ही है, यद्यपि संयोग के गीत भी कम नहीं मिलते। विरह-गीतों में हम पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण आदि मनोदशाओं के संदर्भ खोज सकते हैं। प्रवास का एक उदाहरण सावनी से लीजिए :—

लाय चले थे भंवर पीपली जी,
हां जी कोय हो गई घेर घुमेर,[3] बैठण की रत चाल्ये चाकरी जी!
छोड़ चले थे भंवर जी बाछड़ी जी,
हां जी कोय हो गई लागड़ गाय,[4] दोहण की बर[5] चाल्ये चाकरी जी।
परण चले थे भंवर जी छोहरी जी,
हां जी कोय हो गई जोर जवान, विलसन की बेर चाल्ये चाकरी जी।
रोकड़ रुपैया भंवर जी में बणूं जी,
हां जी कोय बण जाऊं, पीलड़ी मोहर[6], भीड़ पड़े जब मारूजी खरच ली जी।
लोट्टा झारी भंवर जी में बणूंजी,
हां जी कोय बणज्यां रेशम डोर, प्यास लगे जबब म्हारे पिया भर पियो जी।

पूर्वराग के अन्तर्गत प्रेमी का, प्रेयसी के नखशिख-सौंदर्य के प्रति आकर्षण वर्णित है। प्रायः उसकी सुन्दर लटों, नेत्रों, वाक्माधुर्य, गति तथा चेष्टाओं के प्रति रीझ की चर्चा मिलती है। कहीं-कहीं पारस्परिक सौंदर्य के

1. झोली न्योंतू बाबल राजा, ढलिया चाचा ताऊ!
   हेरी भिर मिसरी कूजे हजारी बीरा, जिस तैं मैं ऊजली।
2. झूठ नहीं बोलूंगी, झूठ की सैं म्हारे आण।
   पानीपत की सड़क ऊपर मिडक बांटे बांण . . .।
   देखिए—डॉ. शंकर लाल कृत हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृष्ठ 177।
3. पाठ भेद—गहरी छांय।
4. सुरभि गाय।
5. समय।
6. स्वर्ण मुद्रा।

आस्वादन के संकेत भी दृष्टिगत होते हैं।[1] कुछ स्थलों पर अपने रूप-लावण्य की चुम्बकीय शक्ति के प्रति जग की लालसा पूर्ण दृष्टि को देखकर नव-प्रणयांकुरिता सुन्दरी फाग में अपनी सौंदर्य-चेतना से अभिभूत हो उठती है :—

मेरे गोरे बदन पै रंग बरसै।
हेरी बागां में जाऊं तो माली ललचै,
वो तो पत्ते पै पड़्या पड़्या नींबू मटके मेरे गो बदन . . . ।
हेरी तालों पै जाऊं तो धोबी ललचै, वो तो पट्टे पै पड़्या पड़्या सोट्टा मटके
मेरे गोरे बदन . . . ।
हेरी कुआं पै जाऊं तो भिश्ती ललचै, वो तो घड़िया पै पड़्या पड़्या लोटा मटके।
मेरे गोरे बदन . . . ।
हेरी रसोई मझं जाऊं तो पंडत ललचै, वो तो चकले पै पड़्या पड़्या बेलन मटके।
मेरे गोरे बदन . . . ।
हेरी सेजां में जाऊं तो राजा ललचै, वो तो सेजों पै पड़्या पड़्या तकिया मटके।
मेरे गोरे . . . ।

मानजन्य विरह के गीत भी बड़े सरस हैं। इनमें पत्नी भिन्न-भिन्न प्रकार के आग्रह एवं उपालम्भ प्रस्तुत करती है। कभी वह बागों में बंगला बनवाने का हठ करती है और अन्त में पतिदेव उसकी मनोकामना पूर्ण कर देते हैं।[2] प्रणयमान के उपर्युक्त गीत के अतिरिक्त राधा-कृष्ण के पौराणिक मान का चित्रण निम्न गीत में द्रष्टव्य है :—

एजी जित बांट्ये झोली भर फूल, उड़ै पड़्य सो रहो भगवान।
एजी बरसें सै मेघ, बाहर भीज रहे एकले जी भगवान।
ए जी म्हारे चौतरे पग ना देय, लीप्या पोत्या उपड़े जी भगवान।
एजी इतनी सी सुण के नैं, किसन महलां तैं ऊतरे जी भगवान।
एजी एक चणां दोय दाल, दले पीछै नां मिले जी भगवान।
एजी एक दही, दूजै दूध, फटे पाच्छै नां मिले जी भगवान।
.. .. ..
एजी एक चणां दूजी दाल, पिसे पीछे रलमिलें जी भगवान।
एजी एक दही दूजै दूध, बिलोये पाछै रलमिलें जी भगवान।
एजी एक पुरुष दूजी नार, मनाये पीछे मनए जी भगवान।
एजी रोवे राधे जार-बेजार, आंसू गैरे मोर ज्यूं भगवान।
एजी राधे रूठै बारम्बार, किसन रूठे नां सरै जी भगवान।

उपर्युक्त गीत में हरियाणा के वैवाहिक सम्बन्धों में निहित समग्र एवं व्यावहारिक जीवन-दर्शन प्रतिफलित हुआ है। संघर्ष के बाद शांति और मनाने के बाद मान-भंग हो जाता है। पति-पत्नी के कलह का शमन दोनों ओर से पश्चात्ताप के बाद होता है, एक चने की दो दालों के समान वे शरीर से दो होते हुए भी मन से एक हैं। रुठना पत्नी के लिए सहज है क्योंकि उसे पति के प्रति अपने प्रेम का गहरा विश्वास होता है। भला कहीं भगवान भी भक्त से रूठते हैं? करुण विरह की भी एक बानगी देख लीजिए। बाल-विवाह की प्रथा के कारण कई बार पत्नी की

1. राजा जी तेरी चाल सरूप जणूं हाथी घूमै गाल मझं।
.. .. ..
नाई की तेरा बोल सरूप जणूं कोयल रे बोली बाग मझं।
नाई की तेरी चाल सरूप, जणूं मुरगाई तिरगी ताल मझं।
2. बागां बंगला छिवा दे, मेर मारु जी, रखा दे राज। चांद सूरज सों ही वारणा जी।
बागां बंगला न छिवें गोरी म्हारे, रे नहीं राखै राज . . . ।
रुणझुण अरथ जुड़ाऊ, मेरे मारुजी, चली जाऊं राज अपणें बाप के जी।
.. ..
कंत मनावण आया मेरी साथण, हो चलो क्यूं नाराज, चाल्य गोरी घर आपणे जी।
बागां बंगला छिवा द्यूं गोरी मेरी, रखा द्यूं राज, चांद सूरज सौंही वारणाजी।

आयु पति की अपेक्षा अधिक होती थी। सम वय:शीलता के अभाव में, बाल-पति के साथ उसका यौवन, शृंगार तथा जीवन मुरझा जाता है। अभिव्यक्ति की मार्मिकता और भावों की सुकुमारता के लिए निम्न पंक्तियां कितनी सशक्त हैं :—

कैसे धण ठाड़ी अनमनी रै, अर कैसे तिरा मैला भेस।
कै तेरी सासू करकसा रै, एजी कै बालै भरतार।
रै मेरी बावली मल्हौर।
रतन कटोरी घी जलै रै, बीरा कोई चूल्हे जलै रै कसार[1]।
घूंघट मग्र तै गोरी जलै, जा के याणे[2] हों भरतार। रै मेरी

सोकण गीत अथवा विरजो में भी सौत-समस्या से उत्पन्न वियोग की कल्पना से निकलती हुई लपटों ने 'विरजो एक जोवण झुरवे एकला' गीति का रूप धारण किया है? कभी चांदनी को उपालंभ देती हुई प्रोषितपतिका गा उठती है :—

चांदनी राजा बिन मोरे किस काम,
चांदनी सईया बिन मोरे किस काम।...

संयोग के गीत विवाह-गीतों में भी मिलते हैं। बन्ना बरात लेकर आ रहा है, उसे गौरवपूर्वक मंद-मंथर गति से, मंजिल-ब-मंजिल, अश्वारोहण द्वारा, दाम बरसाते हुए, मेंहदी रचाकर, काजल सार कर, हौले-हौले आने को कहा गया है। किन्तु तेजी से आकर वह बन्नी (वधू) से हंस कर मिलने को तत्पर है[3]। मेंहदी गीत[4] और फाग के रसिया भी शृंगार रस के रंग की वर्षा करने वाले मनोहर गीत हैं। एक किशोरी की ओर संकेत करता हुआ रसिया कहता है :—

ढोलक पै धर गई हाथ, बुला गई नथ बारी,
एक तें एक मलूक कौन सी ले जावै।...।

प्रच्छन्न रति की गोपनीयता[5] से लेकर देवर-भाभी के प्रेम तथा स्वच्छन्द प्रेम के गीत यहां नये-नये रंगों-प्रसंगों में द्रष्टव्य हैं।

6. वीर रस से सिक्त ऐतिहासिक सांके तथा पंवारे

वीर रस से युक्त गाथाएं हरियाणा में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। कारण, हरियाणा में सैनिक-वृत्ति को जीवन का एक उज्ज्वलतम एवं प्रमुख अंग स्वीकार किया जाता है। कुरुक्षेत्र, तरावड़ी, पानीपत, दिल्ली आदि रणक्षेत्रों के साथ भारतीय इतिहास की महान् घटनाओं का सम्बन्ध है। अत: यहां वीरगाथाएँ सुनने का बड़ा चाव है। कृष्ण

---

1. खांड मिश्रित भुना हुआ आटा।
2. अल्पायु।
3. घुड़ला तै उल ल्याइयो, घुड़ला चावक आओ
   अनोखा लाडला हो राईवर धीरे-धीरे चाल, मंजले मंजले चाल।...
4. धोलों री नणदल मेंहदे के पात, रगड़ रचाओ मेंहदा रेचणा जी राज।

   .. .. ..

   लई धण हिवड़े कै ला, आंसू तै पूछे पचरंग चीर के जी राज।
   जीवो जी नणदल थारे बीर, सदा सुहागन म्हारी ननदी जी राज।
   द्यूंगी री नणदल बुगचे की तील छठे म्हीने सीधा कोथली जी राज।
5. गोरी सई सांझ की कहां गई, कोई कहां लगाई सारी रात।
   ए री बनजारा, नवल बनजारा टांडा गेरिए।...
   हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य पृष्ठ 181।

के शौर्य-प्रसंगों से सम्बन्धित गीत चावपूर्वक गाए जाते हैं। 'बिहारी जमुना मझं कूद पड़े, गिरधारी जमुना मझं कूद पड़े' वाला गीत कालीदह में कूदने की याद दिलाता है। किन्तु अधिकांश सांकों तथा पंवारों का सम्बन्ध भारत के मध्य-कालीन इतिहास से है। इनमें आल्हा-ऊदल, गूगा पीर, भूरा-बादल, हाड़ी रानी, अमर सिंह राठौर, वीर जवाहर-मल, भाऊ की शाखा, किस्सा राव कृष्णगोपाल, हरफूल जाट जुलाणी का आदि अत्यन्त प्रख्यात हैं। इनका गायन वर्षा ऋतु के समय किया जाता है। ढोलक की थाप पर आल्हा का रंग गहराता चलता है और बनाफर वंश के क्षत्रियों के युद्धों की अनुभूति-सी श्रोताओं को होने लगती है। भाऊ शाखा में जनकवि निगाही ने, जो स्वयं पानीपत के तीसरे युद्ध का द्रष्टा था और सोनीपत के आस-पास का निवासी था, वीर सदाशिवराव भाऊ के पानीपत के युद्ध में जूझने का, हरियाणवी भाषा में, फड़कता हुआ वर्णन किया है। जब लोकगायक निगाही भाऊ को "मुछैल सूरमा" के नाम से सम्बोधित करते हैं तो श्रोताओं की भुजाएँ फड़कने लगती हैं। लाल किले की विजय का वर्णन जोगी निगाही ने इस प्रकार किया है :—

सुमर निगाही सुरस ही तूं पाक इलाही
चलता भाऊ पेशवा नौबत बजवाई
गोले और बारूद की पेटी भरवाई
मजलों मजलों चालते ना ढील लगाई
दिल्ली मझं आये पेशवा होंणी नै चाही
गाजुद्दीन खां वजीर ने हिकमत बतलाई
जामा महजत की लई सूध धर तोप चढ़ाई
अगन पलीती दई थाप छुटी हड़खाई
गोला मार्‌या किलै मझं कचहड़ी ढाई
दुज्ज मार्‌या बुज मझं उड गए सिपाही सिपाही[1]।

लाल किले पर अधिकार करने के पश्चात् अपने भतीजे विश्वासराव की मृत्यु से पीड़ित क्रुद्ध भाऊ अपने हाथी को अब्दाली की सेवा में झोंक देता है और वह अब्दाली के रक्त से अपने प्रतिशोध की तृप्ति करना चाहता है। यहीं कथा समाप्त हो जाती है।

भाऊ के इन "शाखों" एवं "विरद" की गायन-शैली महाराष्ट्र के 'पोवाड़े' से मिलती है। सारंगी के स्वरों पर और छोटे डफ की संगति से जोगी अपनी परम्परागत शैली में गाकर एक भाव-मीना वातावरण पैदा करते हैं। प्रत्येक 'शाखा' का अन्तन्जी—जी—जी—' की ध्वनि से होता है। दो सौ वर्ष पुराने इस 'शाखे' को संगीत-नाटक अकादमी ने जनवरी 1970 के जनकवि निगाही के वर्तमान वंशज मुस्लिम जोगी श्री इमामुद्दीन की मंडली का गायन सुनकर रिकार्ड किया है[2]। जाहरपीर गूगा का किस्सा हिसार, सिरसा और बीकानेर तक गाया जाता है। गूगा ने मुस्लिम आततायियों से भी कई युद्धों में विजय-श्री प्राप्त की थी। जवाहर मल प्रसिद्ध भरतपुर नरेश सूरजमल के तेजस्वी पुत्र थे और पुष्कर-स्नान के समय इनका भीषण संग्राम ठकुरायत से हुआ था[3]। अहीरवाटी में राव कृष्ण गोपाल और अंग्रेजों की टक्कर के गीत आबालवृद्ध सबकी जबान पर छाए हुए हैं[4]। भूरा-बादल का सांका (वीरगीत) जोगियों द्वारा गाया जाता है। इसमें युद्ध का दृश्य कैसा सजीव हो उठा है :—

डोल्यां तैं कूदैं सुरमे माइयां के लाल, लोहा बाजै कड़ाकड़ तलवार कटार
सर्फ काजो मिया मार तंबू के बाहर, कालर में सुर्खी ज्यूं चलै सामण के खाल
जैसे दूध बिलोवे गूजरी मथुरा दरम्यान
होली खेलें कामनी रही रंग की छूट फुहार[5]।

---

1. पानीपत युद्ध के वीर सैनानी सदाशिवराव भाऊ, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 17 जनवरी, 1970।
2. डाइवरसिटीज "भाऊ बैलेड्स" द् हिन्दुस्तान टाईम्स वीकली, न्यू दिल्ली, 4 जनवरी, 1970।
3. जवाहर सिंह की जयपुर पर चढ़ाई रचयिता रघुवीर सिंह, गारेका, मंगला बुक डिपो, पलवल, 1950।
4. डा. शंकर लाल : हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकैडेमी, इलाहाबाद, पृष्ठ 310-316।
5. हरियाणवी गीतों में वीररस: देवी शंकर प्रभाकर का लेख, जनसाहित्य, हरियाणा लोकमानस विशेषांक, अक्तूबर-नवम्बर, 1965, पृष्ठ 301।

फत्ता-जैमल की गाथा भी वीरता का अप्रतिम पंवाड़ा है। गोरक्षक हरफूल जाट की वीर गाथा को सांगियों ने गाकर अमर कर दिया है।

7. भक्ति-नीति समन्वित गीत

हरियाणा सरस्वती, गंगा तथा यमुना का प्रदेश है। भूमि पर उतरती हुई गंगा का प्रथम अवतरण-स्थल हरिद्वार वस्तुतः हर का द्वार अर्थात् हरियाणे का पवित्र तीर्थ-स्थल है। पूर्व की ओर चलने पर गढ़ मुक्तेश्वर पर प्रतिवर्ष गंगा-स्नान का मेला हर्षवर्धन के काल से कार्तिक पूर्णिमा को लगता चला आ रहा है। गंगाजल तो प्रत्येक घर में बोतलों में भर कर रखा ही जाता है और पुण्यावसरों पर अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की सिद्धि के हेतु इसका आचमन-सिंचन किया जाता है। 'गंगामाई' की अनेकधा स्तुति यहाँ की जाती है। शपथ भी गंगा, गौ और राम की ग्रहण की जाती है। सरस्वती के जलाशय रूप में फैलने से बने, एशिया महाद्वीप में प्रायः सबसे बड़े, स्नेहित और ब्रह्मसरोवर का तीर्थों में ऊंचा स्थान है। कुरुक्षेत्र भूमि में तीर्थों की संख्या सैकड़ों में है, जहाँ वर्ष-भर धार्मिक मेलों की भरमार और साधु-सत्संग का क्रम चलता है और यमुना तो कृष्ण जी की लीला-भूमि मथुरा-वृन्दावन से जुड़ी होने के कारण गौलोक का परम धाम है और भक्तजनों का कीर्तन केन्द्र है। ऐसी भूमि में सात्विक जीवन और भगवत भक्ति की व्याप्ति का भाव सर्वथा सहज एवं संस्कारानुमोदित होने में आश्चर्य की कोई बात नहीं। इस भूमि की पुण्य चेतना से पुलकित एक गरिमा-गान तो देखिए :—

चालो हे भैणां रामभजनियां के देस
लोभ मोह उड़ै दोनूं ए क्रोन्यां, धरम तुलै सै रोज,
चालो हे भैणां राम भजनियां के देस[1]।
लोहा और पीतल दोनूं ए कोन्यां, उड़ै सोना ए तुलै सै रोज,
चालो हे .....।
नुगरे सुगरे उड़ै दोनूं ए कोन्यां, गुरु ए मिलै सै हमेश,
चालो हे .....।
दूध और दही का उड़ै घाटा ए कोन्यां, मक्खन तुलै सै हमेस
चालो हे.....।

इस गीत के अनुसार, हरियाणा की विशेषताएं हैं—रामभक्तों का देश, आस्तिकता की भूमि, सज्जनों और गुरुजनों की बस्ती तथा गोपालों का क्षेत्र। हरियाणा की सीमाओं का बोध होता है इस लक्षण से— 'देसां में देस हरियाणा, जित दूध दही का खाणा'। निरामिष सात्विक भोजन और हरिभजन यहाँ की विलक्षणताएँ हैं।

श्रीराम की कथा के महत्वपूर्ण पक्षों पर अनेक गीत एवं भजन मिलते हैं। दीपावली से लेकर गंगा-स्नान की तिथि पूर्णिमा तक इन गीतों की झंकार प्रभात वेला में ग्रामों के वातावरण को, मंदिरों के प्रशांत, पवित्र और संकीर्तनमय क्षणों के उद्‌बोध से जाग्रत कर देती है। इन भजनों एवं प्रभाती गीतों की टेक में अन्तिम शब्द 'हरे रामा' अथवा 'हे री कोय राम मिलै भगवान' पंक्ति रहा करती है। दशरथ के पैर में हरा बांस काटते समय फाँस लगने और कैकई रानी द्वारा निकालने पर वर देने और रानी द्वारा वर मांग कर राम को बनवास देने, सीता का राम-लक्ष्मण के साथ वन जाने का आग्रह करने, सुमित्रा द्वारा लक्ष्मण को राम की सेवा का उपदेश देने, मार्ग में चलकर सीता के थकने, केवट द्वारा नदी पार कराने, सीता को लौटाने के लिए मंदोदरी द्वारा रावण को उपदेश देने, लक्ष्मण को ब्रह्मास्त्र लगने पर राम के रोने आदि प्रसंगों से सम्बन्धित इक्कीस गीतों का उल्लेख तो हमारे ही हाथ लग चुका है[2]। अधिक खोजने पर और अधिक गीत मिल सकते हैं। इनके प्रमुख नमूने अधोलिखित हैं :—

(क) हाथ कुल्हाड़ी कांधे बसोला, दशरथ बणखण्ड जाएं हरे रामा।
एक बण चालै दो बण ढूंढे, ढूंढा न पाया हरियल बांस हरे रामा . . .

---

1. मिलाइए 'चालो मन गंगा जमना तीर।
गंगा जमना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर। —मीराबाई।
2. हरियाणा लोक गीत संग्रह, सं. नादान हरियाणवी, पृष्ठ 1— 20।

(ख) घर तैं तो चाले तीन प्राणी हो राम। आप एकला साधु जन बोलिए,
हेरै मेरी मौसी के जाए बोलिए मेरे बीर...।

(ग) हाथ गगरिया सिर पैं झझरिया, पायां मझं पायल भारी हो लछमन,
सहज चलो मझं तो हारी हो लछमन ...।

(घ) राम अर लछमन दशरथ के बेटे, दोनूं बणखंड जाएँ
हेरी कोय राम मिले भगवान...।

कृष्ण-भक्ति के गीतों का तांता-सा बँधा मालूम पड़ता है। इनमें कृष्ण की बाल लीला, मुरली की महिमा, कृष्ण-सुदामा आदि के विषय में बहुत-से गीत हैं :—

(क) देखो मदन मोहन की प्रीत, भजन पर कैसा अटकै।
सखी री उनके सिर पैं मोरमुकुट, कान्नां मझं कुंडल कैसे चिमकै ...।

(ख) तेरे चरणां मझं लाग्या मेरा ध्यान, बांसुरी की धुन सुण कै।
राजां नैं छोड़ दिया राज करणां, राणीयां नैं छोड़ दिया रणवास,
बांसुरी की .....।
पालियां नैं छोड़ दिया गऊए चरावणां, गउवां नैं छोड़या घास।
बांसुरी .....।
तार्यां नैं छोड़ दिया मंडरावणां, बीरों नैं छोड़या घरबार
बांसुरी ....।

नीति-विषयक गीतों की मूल धारणा यह है कि पवित्र आचरण और सद्व्यवहार से रहित जीवन टेसू के रंगीन किन्तु निर्गंध पुष्प के समान निरर्थक है। माता-पिता, गुरु, सन्त की सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। पंडित लखमीचन्द ने एक रागिनी में इन्हें गिनाते हुए कहा है :—

मात पिता अर गुरु संत की सेवा करणीं चाहिए।
इन च्यारां के चरण पूज कै सुरग लोक नैं जाणां चाहिए...।

"अभिमान का सिर नीचा" और लड़ाई (कलह-क्लेश) का मुंह काला, काम, क्रोध, लोभ-मोह का नाश ही मनुष्य को मनुष्यता की ओर ले जाता है। सत्संग और हरिभजन ही मनुष्य योनि के महाफल हैं। चरित्र पर लगा दाग मिटता नहीं। सुन्दर शील और शुभ कर्म ही जीवन की ज्योत्स्ना हैं। पं. लखमीचन्द ने गाया है :—

इश्क करै तो कर हर से, लावै तो लौ लाया कर
पीओ तो पी प्रेम रस, खा तो गम खाया कर[1]। टेक
तजै तो तज तिसना नैं, राखै तो राख शरम को
पढ़ तो ले गीता पढ़, सीखै तो योग करम को
सोवै तो सो सेज मोक्ष पर, मेटै तो मेट भरम को
छोड़ै तो पाप छोड़ दे, मानै तो मान धरम को
करै तो जप-तप-दान-पुण्य, अतिथि पर छाया कर। पीओ ....।

पंडित जी ने इसी प्रकार के भाव एक अन्य ईश्वर-लीला विषयक गीत में भी व्यक्त किए हैं[2]। परनारी से प्रेम प्रसंग की प्रताड़ना करने वाले गीत भी हैं, जिनमें त्रिया-हरण के कारण रावण का नाश हुआ :—

पर नारी हो सै बुरी जगत मझं, गात बचाणा चाहिए।....

---

1. जनसाहित्य, हरियाणा लोकमानस, विशेषांक अक्तूबर-नवम्बर, 1965, पृष्ठ 259।
2. भगवान तेरी माया का कोन्यां पाट्या ओरा।
राजा नैं कंगाल बणा दे, धन निरधन नैं धन दे ग्या।...।

गृहस्थ द्वारा विधेय कर्मों में परोपकार, दान-दया, तथा अतिथि-सत्कार पर अधिक ध्यान दिया गया है। साधुओं को भोजन कराने की परम्परा तथा तत्सम्बन्धी प्रशस्ति-गीतों का चलन ग्रामों में अब तक है। राजा मोरध्वज की कथा को हरियाणा में खूब गाया जाता है तथा यही गीत लोगों के लिए अतिथि-सत्कार के आदर्श को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार हरियाणा के लोकगीतों में नीतिकाव्य की पर्याप्त सामग्री अन्वेषणीय है।

8. सांस्कृतिक पुनर्जागरण से सम्बन्धित राष्ट्रीय एवं सुधारमूलक गीत

उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी का समय भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसी कालधारा के अन्तर्गत आर्यसमाज के द्वारा वैदिक वाङ्मय का पुनरुद्धार किया गया, गुरुकुलों की स्थापना की गई तथा सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक अन्धविश्वासों के उन्मूलन का व्रत ग्रहण किया गया। आर्ष-पद्धति की शिक्षा का समारम्भ करके अंग्रेजी संस्कृति एवं शिक्षा की बाढ़ को नगरों एवं ग्रामों का प्लावन करने से रोकने का महत् प्रयास एक चुनौती देने लगा। नारी-शिक्षा, विधवा-विवाह तथा अनाथों के कल्याण की ओर समाज के नेताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ। स्वदेश-प्रेम का स्रोत भी लोगों के हृदय में हिलोरें ले रहा था। इसी कारण अस्पृश्यता, आपसी वैर-विरोध, जाति-पाँति के भेदभाव को भुलाकर राष्ट्रीय जागरण एवं एकता का आन्दोलन चल निकला। भारतीय संस्कृति की गौरव-गाथा के गान लोक-कंठ से झरने लगे। भारत का प्राचीन इतिहास जन-जन को देशभक्ति, वीरता तथा आर्य-जीवन की श्रेष्ठता का मंत्र प्रदान करने लगा। समाज से बाल-विवाह, अविद्या और दुराचार को फटकार दिया गया। अंध-विश्वासों तथा कुरीतियों पर व्यय किए जाने वाले धन का घोर विरोध होने लगा। आर्थिक दरिद्रता के घोर संकट में पड़ी जनता की दुर्दशा के लिए पराधीनता को सबसे बड़ी बाधा माना जाने लगा। इस प्रकार स्वराज्य, स्वदेशी, स्वजातीय अभिमान का चक्र देश की दसों दिशाओं को गुँजाने लगा। आर्य समाज के अतिरिक्त, महात्मा गांधी द्वारा संचालित जन-आन्दोलन ने भी ग्रामों, अछूतों एवं नारियों के उद्धार को महती प्रेरणा तथा पौरुष प्रदान किया। स्वराज्य और स्वदेशी की भावना तथा हिन्दी भाषा के प्रचार को भी गांधी जी ने अप्रतिम समर्थन दिया।

हरियाणा में पुनर्जागरण को गतिशील बनाने वाले कुछ ऐसे कारण भी थे, जो देश के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पृथक् थे। इनमें प्रथम महायुद्ध के अन्तर्गत फ्रांस, इटली, जर्मनी, यूनान, जापान आदि स्वतन्त्र देशों में अंग्रेजों की ओर से लड़ने के लिए भेजे गए हरियाणवी सैनिकों का एक बड़ा समूह था। उन्होंने इन स्वतन्त्र देशों की प्रगति को देखकर अपने प्रान्त में भी उस जीवन-प्रतिमा को संजोने का साहस किया तथा उसके लिए स्कूलों की स्थापना की और अपने पुत्रों को नगरों के कालेजों में अध्ययन के लिए दूर-दूर तक भेजा। अंग्रेजी की पढ़ाई पर कुछ वर्गों ने अत्यधिक ध्यान दिया। सन् 1920 ई० के आसपास सर छोटूराम के राजनैतिक प्रभाव ने भी ग्रामीणों को शहरियों के मुकाबले में संगठित करके अपने अधिकारों के प्रति सजग किया। उनके द्वारा संस्थापित जमींदार (किसान) लीग का ध्येय दलित वर्गों के ग्रामीणों को सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाना था। सन् 1950 ई० के बाद सामाजिक सुधारों के लिये खाप-पंचायतों का आश्रय लिया गया और विवाह में धन के अपव्यय पर रोक लगाई गई। इन सब प्रगतिशील आन्दोलनों की प्रतिध्वनियाँ हरियाणा-लोकगीतों में झंकृत हो उठी हैं :—

(क) टेक—विद्या बिना यह भारतदेश हो गया बरबाद।
अन्तरा-पहले यहाँ होते थे सदाचारी, उनकी जगह हुए व्यभिचारी,
बिगड़ गई सब बुनियाद। विद्या बिना...।
विद्या पढ़ो, पढ़ाओ, आपस में प्रीत बढ़ाओ।
सुधर जाए सब औलाद, विद्या बिना....।
विद्या तज हुए अनारी, भोगते कष्ट सब नरनारी,
सुने ना कोई फरियाद, विद्या बिना...।

विद्या की महिमा के इस गीत में हरियाणा के लोकगायक स्व० दादा बस्तीराम जी ने देश की दुर्दशा का कारण अविद्या को बताया है। अविद्या एक वार्ता में नारियों को आत्म-परिचय दे रही है :—

(ख) कभी सत्य सभा में जाइए ना, हरिगुण में कान लगाइए ना।

सासू ननद सताया कर, पति को दो बार धमकाया कर।
नित तंग पड़ौसियों को रखिए, दिनरात बिराना बुरा तकिए।
किसी से सीधी मत बोलिये तू, प्रभातें घर-घर डोलिये तू।
बस्तीराम, जब ये पूरे परहेज निभावेंगी,
तो मन का वांछित फल पावेंगी।

(ग) अंग्रेजी तालीम जहर का प्याला है ।.....।

वेश्यावृत्ति का भी घोर विरोध किया गया। वस्तुतः हिन्दी साहित्य मे समाज सुधार के लिये जो कार्य सन्त-कवि कबीर ने किया, लगभग वैसा ही कार्य हरियाणा में शतोपरिजीवी पं० बस्तीराम ने किया। खंडन-मंडन शैली की उग्रता दोनों में विद्यमान है। कबीर ने दीक्षा स्वामी रामानन्द से ली थी तो बस्तीराम ने ऋषि दयानन्द से। वेश्याओं को उद्‌बोधन करते हुए पं० जी कहते हैं :—

(घ) चकले के सजाने वाली जरा आगे का ख्याल कर।
लोकलाज कुलकान गंवाई, कर शृंगार सभा में आई,
अरे, जिन मां-बापों ने तू जाई, मत उनको पैमाल कर,
कुल तीन लजाने वाली। चकले ...।
.. ..
हरि सिंह हम दिल घबराया, किस कारण यह पाप कमाया,
रसकपूर बहुतों को खिलाया, बस्तीराम की तू टाल कर
पानों के चबाने वाली। चकले ....।

इन गीतों की भाषा पर भी आर्यसमाजी प्रभाव है। संस्कृतगर्भित खड़ीबोली को ही आर्यसमाज ने आर्यभाषा कहा है। बस्तीराम प्रभृति प्रचारकों की भाषा पर स्थानीय बोली की रंगत के साथ-साथ आर्य-भाषा की छाप भी अंकित रहती है। इसी काल में मेरठ जनपद में लोकगायक शंकरदास तथा घीसा हुए हैं, जो हरियाणा के मेलों में अपनी कविता से दर्शकों को मंत्रमुग्ध करते थे। वीरभाव तथा सात्विक क्रोध का पक्ष लेते हुए वे बोलचाल की खड़ीबोली एवं ब्रज-मिश्रित हरियाणवी में गाते हैं :—

(ङ) गम नां सब जगह बड़ी है, कहीं भग जाएगी पिटवायके। टेक
शूरवीर रण में गम खा कै, पड़ता बीच नरक के जा के
किरोध करे जो तेग बहा के जीते जुज्झ अघाय कै
उस नर को धन्य घड़ी है। गम नां ...।
जै नर सिंह जी गम कूं खाते, जन पहलाद बचने नहीं पाते।
नर-नारी सब सोर मचाते, नैनों नीर बहाय कै
गम तज तकदीर लड़ी है। गम नां ...।
जै राजा गम खाज्या, बसकर, कपटी पापी बढ़ज्यां तसकर
कह घीसा चरणन में फैंस कर, भगवत के गुन गाय के
पिंगल की कथनी जड़ी है। गम नां ...।

हरियाणा के प्रसिद्ध एवं वर्तमान लोकगायक श्री पृथ्वीसिंह 'बेधड़क' ने बड़ी फड़कती हुई खड़ी बोली मिश्रित हरियाणवी में महन्तों के ऐश्वर्य, भोग-विलास एवं पाखंड का खंडन किया है।

बालक दयानन्द और उसकी माता का संवाद एक गीत में है। दयानन्द घर-बार छोड़कर ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिये विनय करता है और माता उसे गृह-त्याग से रोकती है। गीत का वात्सल्य-भाव बड़ा मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी है :—

बेटा, माता बरजै रे पूत की, बेटा मत ना हुए रे फकीर,
तेरी याणी रे उमर, याणी बेद की। टेक

बेटा, कौण तन्ने देगा रे खाण नै, और किसनें कहैगा मुख माय,
तेरी याणी रे उमर . . . ।
बेटा, धूप पड़ै रे धरती तपै, तेरी कंवल सुरत कुम्हलाय,
तेरी याणी रे उमर . . . ।
जब आवे सामण भादवा, और बरसेंगे मूसलधार,
तेरी याणी रे उमर । . . . ।
तेरे बह जांग्ये धूणीं रे सायरा, और कुछ नहीं पार बसाय,
तेरी याणी रे उमर. . . . ।
माता, ईश्वर देंगे री खाण नैं और घर-घर तेरे जैसी माय
तेरी याणी रे उमर . . . ।
बेसक धूप पड़ो री धरती तपो, माता ओटेंगे दुख सरीर,
तेरी याणी रे उमर . . . ।
सारी रात दिनों के है चांदणे, आ के किया पहाड़ां में बास,
तेरी याणी रे उमर . . . . ।
गुरु बिरजानन्द जी सा जाय के, जिनने कर लिया बैद तलास,
तेरी याणी रे उमर . . . ।

महर्षि दयानन्द की वैदिक विचारधारा का प्रभाव हरियाणा में बहुत गहरा पड़ा। वेदों की शिक्षा और गुरुकुल-पद्धति एक आन्दोलन के रूप में जन-मानस पर छाने लगे। पुत्रोत्सव के समय गाया जाने वाला हरियाणवी लोकगीत इसका प्रमाण है :—

मेरा परस[1] चढ़ंता सुसरा म्यूं कहै, बहू लड़के नैं गुरुकुल घाल्य,
लड़के के हिरदे मंत्र ज्ञान सै।
ससुर जी इब के लड़का निदान[2] सै, आगे नैं गुरुकुल द्यूंगी घाल्य,
लड़के के . . . . . ।
मेरा घर में सौन्दा[3] कंत म्यूं कहै, मेरी प्यारी लड़के नैं गुरुकुल घाल्य,
लड़के के हिरदे मंत्र ज्ञान सै ।

कहीं मां गा उठती है—"अपने प्यारे लाल नैं पढ़ाऊं गुरुकुल मंत्र।" इसी प्रकार कन्या-शिक्षा का प्रचार होने लगा और लोग अपेक्षा करने लगे—

पहले जैसी नारी बनें कन्या पाठशाला में।
जनक की दुलारी बनें कन्या पाठशाला में।

सोता हुआ राष्ट्र जाग उठा और गायकों ने भारतवासियों को सम्बोधित किया :—

(क) भारतवासी जागो तुम शेरों की सन्तान हो। . . .

(ख) भारत के भाग्य तू, सोता क्यूं जाग तू।
भारत की एक बहादुर बेटी, लक्ष्मीबाई झांसी,
उलट-पुलट किया कतल सांडरस, वीर भगत चढ़े फांसी
खेल वो फाग तू, भारत के भाग्य तूं।

---

1. चौपाल
2. कम आयु का
3. सोता हुआ

इस कोने में से उन कोने तक हुई दुनियां में हलचल,
कलकत्ता देखा, पेशावर जा लिया, पेशावर टोहा काबुल,
नेता सुभाष तू, भारत के भाग्य तू। . . . ।

ऐसे प्रेरणादायक गीतों को सुनकर जन-मन अशांत और विक्षुब्ध हो गया। मातृभूमि को स्वाधीन करने के लिये लोगों ने गांधी जी के नेतृत्व का अनुसरण किया। गृहस्थी के धंधों को छोड़ कर सत्याग्रह के लिये वीरों ने आत्मसमर्पण किया—

अम्मा तो रोवे, रे वीरा आपणी, कौन भरेगा भात,[1]
गांधी नें झंडा ठा लिया।
तू क्यों रोवे री भैनां[2] याणें से भरेंगे भात,
गांधी नें झंडा ठा लिया[3] . . . ।

सत्याग्रहियों ने देश के लिये आत्म-बलिदान किया। साथ ही विलायती माल का बायकाट और स्वदेशी के प्रति रुचि जागृत हुई। अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण की दुरभिसंधि के लिये नरनारियों में सक्रियता एवं व्यग्रता लक्षित होने लगी। लड़कियों में परामर्श होने लगा :—

तुम बूंद[4] बिलायती छोड़ो हे सखी, गांधी महात्मा आ रहे हैं।
तुम खद्दर पहना करो हे सखी, ... ।
तुम नथ और बाली छोड़ो हे सखी, ... ।
तुम मिल का चून पिसाना छोड़ो हे सखी, घर का पिसा खाया करो,
गांधी . . . . . ।
तुम फिल्मी गाने छोड़ो हे सखी, गांधी के गीत गाया करो।
गांधी . . . . . ।

गांधी जी की मृत्यु पर भी लोक-कवियों ने अपनी शोक-संवेदना व्यक्त करके उस राष्ट्रनायक के प्रति अत्यन्त भाव-भीनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत की। सचमुच उनकी मृत्यु से राष्ट्र अनाथ-सा हो गया था। गीत का बिम्ब कितना मर्मभेदी है :—

(क) भारत के चन्दरमां छिपग्ये, रहे बिलखते तारे,
नत्थू नीच मरहटा था जिनै आन गांधी जी मारे।
करण प्रार्थना गया हुआ था जुलम हुए बिन धोली,
बाएँ-बाएँ दो कन्यां थी भरे पिता की कोली,
बेदरदी में दया करी नां तीन मार दी गोली,
बहुत से माणस कठ्ठे होग्ये बणां-बणां कै टोली। . . . . . ।

(ख) काचा कुणबा[5] छोड़ पिता जी सुरग लोक नें सोग्ये।
हे भारत के नरनारी बिना पिता के हो ग्ये, . . .
पहली गोली लाग्यी कोन्यां दूजी में घबराए,
तीजी गोली में प्राण त्याग दिए मौत घाट पै आए।
हे नत्थू राम तनें सरम नां आई कितै कूआं जोहड़ नां पाया[6]।

---

1. विवाह में भाई द्वारा देय धन-वस्त्रादि, 2—बहन।
3. यह गीत यमुना के खादर क्षेत्र के हैं और खड़ी बोली से प्रभावित हरियाणवी में है।
4. बुंदकीमार छींट का वस्त्र।
5. छोटे बाल-बच्चों वाला कुटुम्ब।
6. डूब मरना।

देशभक्ति के गीतों द्वारा मातृभूमि की लाज बचाने के लिये माताएँ अपने लालों को प्रेरित करती हैं। चीन और पाक के साथ हुए संघर्षों में भी हरियाणा के वीर सूरमाओं तथा वीरांगनाओं में उत्साह की लहरें उठती हैं और वे मां के दूध अथवा गौरव की रक्षा निमित्त अपना सर्वस्व होम करने के लिये उद्यत रहते हैं :—

(क) कर देश की रक्षा, चाल्या, लाल मेरे, सज-धज के।
अरिदल नै सीमाएं तेरी, चारों ओर से आकर घेरी,
क्या इसका नहीं ख्याल, लाल मेरे सज-धज के।
जिस दिन के लिये तनें दूध पिलाया, वो आज लाडले आया,
करके दिखा कमाल, लाल मेरे.....
शहादत है जाने की आना, आया है उसे होगा जाना,
धनी हो या कंगाल, लाल मेरे.....।

यहाँ आत्मा के अमरत्व का संदेश देकर प्राणोत्सर्ग की बात कही गई है। गीत की इन पंक्तियों को पढ़कर अनायास गीता के उपदेश का स्मरण हो आता है। एक किशोरी भी अपनी मां से रणक्षेत्र में जाने के लिये मचलती हुई गाती है :—

(ख) मैं चीन से लड़ने जाऊँगी, मानूं नां मेरी मां।
ये सारा जेवर बेचूँगी, कुछे रक्षा-कोष में द्यूँगी
कुछ के हथियार मंगाऊँगी, मानूं नां मेरी मां।
.. ..
उस पापी आततायी के, चाऊ एन लाई के
सिर पै गोले बरसाऊंगी, मानूं नां मेरी मां।

समाज-सुधार, देशभक्ति, सांस्कृतिक नवजागरण, धार्मिक-जागृति तथा राजनैतिक चेतना के गीतों के अतिरिक्त ग्रामोत्थान एवं आर्थिक निर्माण के गीत भी उपलब्ध हैं। किसान-मजदूर के प्रति गायकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। ऐसे प्रगतिशील तत्व गीतों में स्थान पा सके हैं—'किसान, तेरा हाल देख के मेरा जीवड़ा रोया।' इस प्रकार हरियाणा के लोकगीतों में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण के साथ-साथ आधुनिक जीवन की प्रगति एवं विषम जटिलताओं का आकलन भी दर्शनीय है।

9. कृषि एवं दैनिक जीवन की समस्याओं से संकुल गीत

कृषि-जीवन से सम्बन्धित गीतों में पशु तथा अन्न सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। पशुओं में गौ, बैल तथा ऊँट की करुण पुकार तथा उनके पालकों की उनके प्रति निर्मम क्रूरता की व्यंजना की गई है। बूढ़ा बैल आक्रोश के स्वर में किसान से कहता है, कि वह उसे अशक्त वार्धक्य के दिनों में अपने खूँटे से क्यों डिगा रहा है। बुढ़ापा तो विश्राम और 'पेंशन' पाने का समय होता है, क्या उसको 'प्रोविडेंट फंड' बिल्कुल ही नहीं मिलेगा :—

(क) अरे न्यूं रीवे बुड्ढा बैल, मनें मित बेचें रै पापी।
तेरे कूआ-कोल्हू में चाल्या, नाज[1] कमा के तेरे घर घाल्या।
इब तनें करली बजर की छाती...।
.. ..

समाज की इसी कृतघ्नता एवं जघन्य मनोवृत्ति की शिकार गौमाता भी है। गौ का उपकार भूल कर हम उसके वंश पर अत्याचार करते हैं। इसी से उस की पलकें गीली हो जाती हैं :—

(ख) न्यूं कह रही धौली गाय, मेरी कोई सुणता नाहीं।
मेरे कित गये सिरी भगवान, मैं दुख पाय रही।

---

1. अनाज

मेरा बूध पीवे संसार, घी तें खावें खीचड़ी।
मेरे पूत कमावे नाज, महंगे भा[1] की रुई।
जब भी मेरे गले पै छुरी।....।

और ऊँट को शिकायत है अपने भद्देपन की। यह राम कहानी प्रश्नोत्तर शैली में है :—

(ग) ताकतवर बलवान बना क्यूं भूंडी[2] शक्ल बनाई रे ?
क्यें बूझैगा मेरे मन की घणी मुसीबत आई रे।
दई खुदा नें टांग बड़ी जो दो दो गज तक जाती रे।
ऊपर बोझा लदे घणां जब तीन तीन बल खाती रे।
लगें रगड़[3] के ईडर[4] कना मिलता कोई हिमाती रे।.....।

बाजरा बड़ा पौष्टिक किन्तु कठोर अन्न होता है। देहाती हास्य-व्यंग्य के क्षणों में बाजरे को वज्रलेप कहते हैं। यह नटखट तथा दुस्साध्य पदार्थ है :—

(क) बाजरा कहै मैं बड़ा अलबेल्ला, दो मूसल तें लड़ूं अकेल्ला।
जे तिरी नाजो[5] खीचड़ी खाय, काया फूल कोठी हो जाय।

(ख) आध पाव बाजरा कूटण बैठी, उछल उछल घर भरियो, शैतान बाजरा।
आधा पाव बाजरा पकावण बैठी, खदक खदक हंडिया भरियो, शैतान बाजरा।

'जी का जंजाल बाजरा'—बाजरे की खिचड़ी पकाने वाली भुक्त-भोगी महिलाएँ ही इस गीत की सत्यता को आँक सकती हैं। इसी प्रकार नवोढ़ाओं के लिये मक्की का आटा पीसना भी बड़ा दुस्सह कार्य होता है और मक्की की पिसाई के नाम से उनके देवता तक काँपने लग जाते हैं। इसी प्रकार का कष्टसाध्य कार्य है—ईख की खेती। यद्यपि यह नकदी फसल है तथापि बारह महीने भर किसान-परिवार के खून को सुखाकर ही हरी-भरी रहती है। श्रम-क्लांत-किसान-बधू इससे तंग आकर शिकायत करती है :—

बहोत सताई ईंखड़े रे, तन्नै बहोत सताई रे।
बालक छोडे रोवते रे....
डालड़ी में छोड्या पीसणां अर छोड्डी सै लागड़ गाय,
नगोड़े ईंखड़े। तन्नै बहोत सताई रे।

ईख पेरते समय ठिठुरती रातों में किसान की कल्पना के पंख फड़फड़ाने लगते हैं और वे उलट-बासियों की पद्धति पर मल्होर गाने लगते हैं। इनमें जीवन के अनुभवों को मुक्तक शैली में विचित्र ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और प्रत्येक मल्होर दूसरी से स्वतन्त्र एवं असम्बद्ध होती है :—

अम्बर ऊपर हल चलै, बुलध गऊ के पेट।
हाली तो जनमो नहीं, रुटियारी खड़ी खेत। मेरी बावली मल्होर।

दैनिक जीवन की समस्याओं में ससुराल के कष्टों के साथ मरुभूमि की भीषणता ने भी वधुओं के जीवन को नारकीय कष्टों से भर दिया। ऐसी स्थिति में एक उड़ते हुए कौव्वे को संदेशवाहक बनाकर पीहर भेजने की इच्छा से चर्खा कातती हुई एक नववधू कहती है :—

उड़जा जा रे कागा, ले जा रे तागा, जांबा तो जइए मेरे बाप कै।
.. ..

---

1. भाव
2. भद्दी
3. रगड़
4. पेट के नीचे का उभरा हुआ मांस का भाग
5. नखरे वाली

मेरे सिर पै खारी कागा, हाथ बुहारी मुरट बुहारु में खड़ी-खड़ी
मैं सट सट मारूं टसटस रोऊं, रोऊं नाई का तेरे जीव नैं।
बहोत दुखी सूं बागड़ देस में[1]।

10. विविध गीत

इस कोटि में उन गीतों को लिया गया है जो उपर्युक्त कोटियों में नहीं आ पाए हैं अथवा कुछ अधिक विशिष्टता युक्त हैं। ऊपर हमने महिलाओं और पुरुषों द्वारा गेय अथवा उनके जीवन सम्बन्धी गीतों की चर्चा की है। किन्तु बाल-गीत रह गये थे। बाल-गीतों से यहाँ अभिप्राय है—बालकों के लिये गेय गीत अथवा लोरियाँ। बच्चों को रिझाने, उनका ध्यान आकृष्ट करने, रोने से रोकने, सुलाने, खिलाने-पिलाने, मनोरंजित करने, नहाने, खेल में लगाने, मां-बाप की ओर से उनकी नजरें बचाने, झुलाने, हेलमेल पैदा करने, गुदगुदी करके हँसाने आदि के लिये कुछ बड़े बच्चों अथवा बड़ों द्वारा 'आं.....आं....आं' की लय में अथवा चुटकी, धातु के बर्तन, जीभ की टटकारी, चुचकारी आदि बजाकर जो लघुगीत गाये जाते हैं, वस्तुतः वही लोरी-गीतियाँ कहलाती हैं :—

(क) लल्ला लल्ला लोरी रे आं..आं..आं.. लल्ला लल्ला लोरी रे।
(थपकी देती हुई और बच्चे को हिलाती और स्वयं हिलती हुई उपर्युक्त पंक्ति की तीन-चार बार आवृत्ति करती है)

दूध की भरी कटोरी रे आं..आं..आं.. दूध की भरी कटोरी रे
लल्ला लल्ला लोरी..... ।
लल्ला की मां पानी नैं जा, आं....आं....आं लल्ला की मां पानी नैं जा ।
लल्ला दूध मलाई खा .....लल्ला, दूध मलाई खा।
लल्ला रे ललवणियां मेरे, बारहा गज का तणीयां[2] रे।
चंदा मामा आएगा, दूध मलाई लाएगा।

(ख) पायां मांह पैंजणीयां, लल्ला छुमक छुमक डोलेगा
हरी जरी के टोपली, बाजार सौंही डोलेगा
दादा कह के बोलेगा, दादी की गोदी खेलेगा।
पायां मांह पैंजणीयां, लल्ला छुमक छुमक डोलेगा।[3]

लोरियों के अतिरिक्त विविध गीतों में चर्खा कातने, पनघट[4], जल अथवा कुआँ पूजने वा पीलिया पहनने के प्रसंग, देवी-देवताओं की पूजा के मांगलिक गीत, शोक गीत[5] तथा सावन-फाग के व्यंग्य-हास्य-और हास्य-व्यंग्य-गीतों के अतिरिक्त हास्य-विनोद वाले गीत आते हैं। बहरे परिवार का एक गीत इस प्रकार है:—

सासू बहरी सुसरा बहरा, बहरा से घरआला[6] हे।
इन तीनों में मैं भी बहरी, च्यारां का सै जोड़ा हे।
सुसरा तै मेरा भैंस चरावै, वो जा रहा सै हाली हे।
सासू तो मेरी, रोटी पोवे[7], मैं जा सूं रुटियारी हे।

---

1. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 256-259
2. छोटी लंगोटी
3. हरियाणे दे लोक गीत सं० एम० एस० रणधावा; पृ० 94-95
4. वही पृ० 90
5. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य पृ० 198–200
6. पति
7. पकाना

राही छोड़ बटेऊ आया, टेसण[1] की राही बताइयो रे।
धोले[2] के सै पान से[3] लाग्ये, लीला चार सै में आ र्‌या रे।
रोटी ले के गई रुटियारी[4], बुलधां[5] के नो सै लाग्ये रे।
नूण मिरच तेरी मां नें गेरा[6], मन्नै गाल[7] सुना र्‌या सै।
सुसरा आया भैंस चरा कै, बहू जाणें[8] की कहरी सै।
कौण कहै या गार्‌या[9] में धंसी, काली काढ़ के[10] ल्याया सूं।
कौण कहै या भूखी रह री, डहरां[11] में चरा के लाया सूं।

यहाँ संयोगवश सभी बहरे हैं और कोई किसी की सुनता-समझता नहीं बल्कि अपनी-अपनी हांके जा रहे हैं। प्रश्न कुछ और उत्तर कुछ। पति बैलों की पूंजी की बात कहता है तो पत्नी समझती है कि नमक-मिर्च की कमी-बेशी से यह मुझे अपशब्द सुना रहा है और वह नाराज हो जाती है। ऐसा ही गीत बाल-पति के विषय में उल्लेखनीय है।[12]

वस्तुतः गीतों का विस्तार इतना है कि उन सब को समेटना एकदम असंभव-सा लगता है। और यदि बहुत-से गीत मेरी दृष्टि से भी ओझल रह गये हों तो यह कोई विस्मयजनक घटना नहीं होगी। खादर, नरदक, बांगर, हरियाणा, बागड़, देश, ब्रज, मेवात, पार (जमना के) आदि अंचलों से गीतों को खोजने की कोशिश की गई है, अतः गीतों में बोली-भेद का होना स्वाभाविक है। किन्तु तिस पर भी ये गीत हैं, हरियाणा के अंचल-उपांचल की बोली उप-बोलियों के ही। बोधगम्यता और टंकण की सुविधा के लिये लिप्यंतरण में कहीं-कहीं अन्तर दृष्टिगत हो तो उसे विवशता के संदर्भ में समझा जाना अपेक्षित है। यथास्थान कुछ नियम भी इस बारे में दे दिये गये हैं।

इन गीतों की भाषा-शैली, आलंकारिकता तथा शब्दशक्तियों के चमत्कार के विषय में बड़ी उत्सुकतापूर्वक लिखना चाहता था और फिल्मी गीतों पर पड़े हरियाणा गीतों के प्रभाव को भी सोदाहरण स्पष्ट करना चाहता था किन्तु स्थानाभाव के कारण विवश जो हूँ। हाँ, यह मैं अवश्य अनुभव करता हूँ कि इनके अध्ययन से पाठक लोक-व्यवहार एवं जन-संस्कृति की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं तथा शासक-वर्ग लोकमानस की गहराइयों में झांक सकता है और जनता के सहयोग का भाजन बन सकता है। अब आप ही बताएँ कि क्या यह लोकगीतों की कम उपलब्धि होगी।

---

1. स्टेशन
2. श्वेत बैल
3. पांच सौ
4. रोटी ले जाने वाली
5. बैल
6. डाला
7. गालियाँ
8. प्रस्थान
9. पंक
10. भली प्रकार नहला-चमका कर
11. झील के खेत
12. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० 331

हरियाणा की साहित्यिक परम्परा

—कश्मीरी लाल ज़ाकिर—

किसी भी भाषा में रचा गया साहित्य अपने देश व समाज का दर्पण होता है। साहित्य की सदियों पुरानी परम्परा से एक गौरवमय इतिहास का निर्माण हुआ है। महान परम्परा मंडित यह साहित्य नाना रूपों और शैलियों, यथा कविता, गल्प, लेख एवं शोध आदि में निखरता आ रहा है। सामाजिक अन्याय और जुल्म के प्रति आवाज़, सामान्य जीवन-वृत्त, स्वाभाविक घटनाएं तथा अलौकिक एवं आश्चर्यजनक वृत्तांत की गंध भी इन्हीं में मिलती है। अन्याय व जुल्म के विरुद्ध खून खौलने वाली व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावनाओं को लिये सच्चा साहित्यकार चुप्पी साधे नहीं बैठ सकता। वह सामाजिक मर्यादाओं, नैतिक मूल्यों तथा राष्ट्रीय परम्पराओं से बंधकर जन-जन को जिह्वा देता है। इस से जनता में उज्ज्वल भविष्य की आशामयी किरणों का आगमन होता है, आगे बढ़ने हेतु असीम साहस एवं मनोबल की उत्पत्ति भी। इस प्रकार मानवीय भावों के लिये राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारियों का अहसास करने वाले साहित्यकार का साहित्य राष्ट्रनिधि बन जाता है।

इस दृष्टि से हरियाणा राज्य में किसी भी भाषा में रचा गया साहित्य इस प्रदेश की भावनाओं, आकांक्षाओं और इच्छाओं का प्रतीक है। यह देश का वह भूभाग है, जिसमें सभ्यता और संस्कृति ने अपना नवीन रूप धारण किया, फूली-फली और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हुई। यहीं आर्य सभ्यता के सप्त-सौध खड़े हुए, वैदिक काल में ज्ञान-सुपर्ण अनंत अंतराल में उड़े, फिर रामायण तथा महाभारत काल में क्रमशः साहित्य, संस्कृति कला और धर्म का विशेष विकास हुआ। हर्षकाल में यहां सभ्यता और संस्कृति उत्कर्ष की चरमसीमा पर थी। अतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि हरियाणा की भूमि साहित्यिक रूप में और भी उर्वर रही है क्योंकि यहां के परम पावन कुरुजांगल प्रदेश तथा सरस्वती और दृषद्वती नदियों के तटों पर बसे ब्रह्मावर्त में सृष्टि के ऊषाकाल में नाना ऋषियों की ऋचाएं उच्चरित हुई हैं। उन के आश्रमों में ऋषिकण्ठों से उद्गीत वेदमन्त्रों से दिशाएं अनुनादित हुईं। फिर यज्ञकुंडों से उद्गत धूम ने नभोमंडल को आच्छादित किया। इतना ही नहीं, न जाने कितने महर्षियों, भक्तों, संतों, महात्माओं, सुधारकों तथा साहित्यकारों की यह साधना-भूमि रही है।

हरियाणा की यह साधना-भूमि युद्ध भूमि में भी परिणत हुई। इस से तप प्रवृत्ति में विघ्न पड़ा, चिंतन-धारा अवरुद्ध हुई। अस्त्र खनखनाए, घोड़ों की टापें गूंजी, योद्धाओं की ललकार सुनाई दी और दिनों, सप्ताहों और मासों युद्ध चला। फिर क्या था? रक्त की नदी बही और उसी में बह गई तप-साधना और साहित्य-सृष्टि। पर ..... एक बार नहीं, अनेक बार समूचे देश का निर्णय करने वाली इस वीर धरती ने इस वीक्षेय काल में भी पुनः अदम्य शौर्य और साहस का परिचय दिया। साहित्य और संस्कृति ने फिर अंगड़ाई ली। साहित्य जगत के आत्मसम्मान और आत्मगौरव के परिचय से फिर जन-जन सजग हो उठा और अनूठी साहित्य-धारा प्रवाहित हुई।

देश स्वतन्त्र हुआ। जनता का अपूर्व साहस देश विभाजन के समय भी बना रहा। अविभाजित पंजाब से अनेक हिन्दी भाषी लोग भी यहां आ कर रहने लगे। साहित्य-सेवा का क्रम यहां भी जारी रहा। परन्तु इस क्षेत्र की जन-भावनाएं फिर उमड़ीं और इन के स्वप्न साकार हुए जब यह हिन्दी भाषी क्षेत्र अलग से 'हरियाणा' राज्य के रूप में उठ खड़ा हुआ। लेकिन इस मध्य सभी लोगों ने यहां के जीवन और वातावरण में एक रस हो कर राज्य की साहित्यिक समृद्धि में अपना योगदान जारी रखा।

इस भूमंडल में होने वाले हर परिवर्तन के साथ-साथ तप और साधना भी एक करवट लेती रही है; एक जीवंत करवट। यही है संक्षेप में हरियाणा की साहित्यिक गतिविधियों का इतिहास। इस परम्परा में अनेकों सृष्टाओं ने इस राज्य को अपने साहित्य-जल से समृद्ध किया है।

प्राचीन साहित्य-दर्शन

सर्वप्रथम यहां जैन, सिद्ध, नाथ, एवं सूफी धर्मों व मतों, राम एवं कृष्ण भक्तों, तथा वीर काव्य के रचनाकारों नें अपने सहयोग से हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया, जिनमें से यहां कुछेक महत्वपूर्ण साहित्यकारों का संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है।

संवत् 1029 के रचनाकाल में जैन मत के प्रसिद्ध कवि पुष्पदंत हुए हैं। उन की महापुराण, तिसट्ठि-महापुरिस, गुणालंकार, णायकुमार चरित्र इत्यादि में विरह का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन मिलता है। आगे भी इसी मत का जिक्र उपलब्ध है। संवत् 1831 में जन्में आत्मा राम ने अपनी 'आत्म-बावनी' एवं अनेक पूजा आदि विषय की पद-रचनाओं में इस मत के प्रभाव का बोध होता है। प्रसिद्ध सूफी कवि फरीद ने सिरसा एवं हांसी स्थानों पर निवास करते हुए, फ़ारसी, मुलतानी, पंजाबी तथा हिन्दी भाषाओं में साहित्य रचना की। 1263 विक्रमी में गियासुद्दीन तुगलक के राज्य में शेख बू अली शाह कलंदर ने हरियाणा में रचित सूफ़ी काव्य परम्परा को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया।

हिन्दी साहित्य के सूर्य महाकवि सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार स्वीकार किये गये हैं। गुड़गांव जिले के सिही नामक ग्राम में संवत् 1640 तथा 1540 के मध्य जन्में सूरदास ने वात्सल्य रस एवं भक्ति प्रेरक 'सूर सागर' तथा 'सूर सारावलि' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ रचे हैं। संत ऊधोदास ने सतनामी पंथ की स्थापना की और अपनी लेखनी से इसी मत का प्रचार हरियाणा राज्य में किया। इसी शाखा को विकसित करने वालों में दादू पंथी मठ के संस्थापक महात्मा हरिदास भी हुए हैं। ग्राम्य भावों से प्रभावित होकर उन्होंने जात-पात के समापन पर बल दिया है। संत नित्यानन्द ने बेरी के निकट दूबलधन गांव में तपस्या करके 'सत्य सिद्धान्त प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की। इसी तरह संवत् 1620 के निकट दीदार सिंह कवि द्वारा कुरुक्षेत्र नगर में एक खण्डकाव्य 'दीदार चौबीसा' रचा जिसमें कृष्ण राधा कथानक लिया गया है।

रीतिकालीन परम्परा का विकास भी इसी प्रदेश में हुआ। संवत् 1680 के रचनाकाल में पंडित भगवती प्रसाद बूड़िया की चतुर बंजारा, रोहिकी दास, समाधिरास एवं सीता सुत आदि रचनाओं में नायिका और उसके सौंदर्य वर्णन में परम्परागत उपमानों का प्रयोग मिलता है। कवि बनारसी दास एवं कवि हृदयराम मिश्र ने 1731 संवत् में 'रसतरंगिनी' का भाषानुवाद 'रसरत्नाकर' में किया।

चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदास दक्षिणांचल मेवात के प्रसिद्ध महात्मा थे। उन्होंने अमरलोक, अखंडधाम, ब्रज चरित्र व भक्ति पदार्थ आदि रचनाएं रची। इन की ही एक शिष्या सहजोबाई ने मीरा की भांति 'सहज प्रकाश' में सुन्दर एवं मनोहारी आराध्य भावना से आराधना की है। दयाबाई ने 'दयाबोध' एवं 'विनय मालिका' में गुरु महिमा एवं वैराग्य का चित्रण किया है।

सम्वत् 1744 में उत्पन्न साधु गरीब दास महात्मा कबीर के शिष्य माने जाते हैं। उन्होंने 'रत्नसागर' ग्रंथ लिख कर इस प्रदेश की साहित्यिक परम्परा को और भी उज्ज्वल किया। संवत् 1789 में गुलाब सिंह द्वारा रचित 'भांवर सामृत' 'मोक्ष पंथ' एवं तीसरी कृति 'अध्यात्म रामायण' है। संवत् 1845 में पारिवारिक सीमाओं से मुक्त होकर संतोख सिंह ने 'गुरुप्रताप सूरज' में रामायण तथा गुरुनानक का जिक्र किया है। पं. जगन्नाथ दास रत्नाकर नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक होने के अतिरिक्त समालोचक एवं निबन्धकार थे। इनकी रचनाओं में भक्ति एवं शौर्य की गंध मिलती है। जोन्द के ही एक अन्य खड़ी बोली के दरबारी कवि साहिब सिंह 'मृगेन्द्र' ने अपनी रचनाओं में साहित्यिक परम्परा को सुचारु रूप से बनाए रखा।

हरियाणा के साहित्य को जागृत करने वाले पं. दीनदयालु शर्मा ने 'हरियाणा' नाम से उर्दू पत्रिका निकाल कर इसे साहित्यिक स्वर दिया । हिन्दी, संस्कृत, के प्रबल समर्थक दीनदयालु जी 'व्याख्यान वाचस्पति' एवं प्रभावशाली प्रतिभा थे । 'मथुरा' तथा 'कोहेनूर' के सम्पादन के अतिरिक्त देवनागरी पत्रिका निकालकर उन्होंने आह्वान किया कि इस लिपि से विश्व की सभी भाषाएं लिखी जा सकती हैं।

पत्रकारिता, हास्य-व्यंग्य, शोध एवं निबन्ध लेखन की सफल परम्परा को सशक्त करने वाले श्री बालमुकुन्द गुप्त का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदैव अमर रहेगा । अखबारे चुनार, भारत मित्र, बंगवासी एवं कोहेनूर पत्रों के कुशल एवं सिद्धहस्त सम्पादन के अतिरिक्त निबन्धावलि तथा शिवशम्भु का चिट्ठा आदि कृतियों से उन की ओजस्वी लेखनी का बोध होता है। खिलौना, खेल तमाशा आदि गद्य रचनाओं के साथ 'मडेल भगिनि' नामक बंगला एवं संस्कृत नाटक 'रत्नावली' का अनुवाद सुन्दर बना है। इसी तरह भिवानी के श्री माधो प्रसाद मिश्र ने पत्रकारिता तथा माधो मिश्र निबन्ध माला में निबन्ध लड़ी को आगे बढ़ाया है। इसी में इन्हीं के साथी राधाकृष्ण मिश्र भी थे। शिवनारायण शास्त्री ने स्त्री कर्त्तव्य-शिक्षा व छात्रबोधिनी की रचना की जबकि करनाल के राटोली नामक स्थान के पं. छज्जू राम ने कुरुक्षेत्र महात्म्य के अतिरिक्त हिन्दी व्याकरण संबंधी अपना अमूल्य योगदान दिया है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य

उक्त चर्चित संक्षिप्त साहित्यिक इतिहास से हरियाणा में हुए विभिन्न भाषायी विद्वानों की एक झलक मिलती है। यह भी बोध होता है कि संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन का यह प्राचीन काल से केन्द्र रहा है। इसी तरह आधुनिक काल तक अनेकों बुद्धिजीवियों ने अनेकानेक विषयों में कई ग्रंथों की रचना करके संस्कृत के भंडार में अपूर्व वृद्धि की है।

संस्कृत के साहित्य स्रष्टाओं में विशेष उल्लेखनीय है भिवानी में दादू सम्प्रदाय के स्वामी हीरादास जी । दादू की शिष्य परम्परा के बारहवें एवं 'दादू रामोदय' महाकाव्य के रचनाकार स्वामी हीरादास ने रोचक उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं से चार चांद लगा दिए हैं । दूर तक विख्यात विद्वत्ता रखने वाले भिवानी के ही अन्य विद्वान विद्यामार्तण्ड पंडित सीता राम शास्त्री ने यास्क कृत निरुक्त की हिन्दी में सरल एवं सुबोध व्याख्या की है। भगवद्गीता की व्याख्या के साथ पंडित जी ने साहित्य शास्त्र पर दो ग्रंथ एवं सांख्यदर्शन की व्याख्या लिखी है।

सरल रीति से साहित्य शास्त्र का ज्ञान, अलंकारादि के भेद प्रभेदों की उलझन से बचाना, परिष्कृत संस्कृत द्वारा वाद-युग की प्राचीन पद्धति में प्रवृत्त कराना एवं साहित्यशास्त्र को प्रौढ़ विधा न मानने के मत का निराकरण जीन्द के रिटोली ग्राम के पं. छज्जू राम शास्त्री विद्यासागर ने बहुत सुन्दर ढंग से किया है। पंडित जी के कुरुक्षेत्र महात्म्य और कर्म काण्ड पद्धति; संस्कृत वाङ्मय पर कतिपय प्रमुख ग्रंथ हैं। पं. माधवाचार्य शास्त्री ने कबीर चरितम् एवं कथाशतकम् आदि कृतियों में आधुनिकता पर गहरी चोट एवं गीता पुराण आदि विभूतियों का वर्णन किया है। करनाल जिले के ही पंडित विद्यानिधि शास्त्री भी नाना विषयों के आचार्य एवं कवि रहे हैं ।

महामहोपाध्याय पंडित विद्याधर शास्त्री वेदाचार्य का वेद विषयक साहित्य सुविख्यात है । सिरसा खेड़ी के निवासी विद्याधर शास्त्री के तीन ग्रंथ प्रमुख हैं। इन्हीं के सुपुत्र श्री वेणी राम गौड़ वेदाचार्य ने वैदिक कर्मकांड का विस्तृत निरूपण किया है। जुलाना मण्डी के ही पंडित हरिपुण्य न्यायरत्न का नाम परीक्षोपयोगी ग्रंथ लेख का रूप उल्लेखनीय है। भिवानी के पंडित सत्यदेव वाशिष्ठ तथा पं० रुद्रदेव त्रिपाठी की आत्मनिवेदन पर संस्कृत की बृहत भूमिका है। पंडित शिवनारायण शास्त्री जीन्द जिला के साहित्यकार थे, जिन्होंने दर्शन के साथ-साथ व्याकरण की भी उद्भट विद्वता दिखाई है। पूर्वोल्लिखित विद्वान शास्त्रार्य महारथी पं० माधवाचार्य जी के सुपुत्र पं० प्रेम चार्य शास्त्री भी इसी काल के संस्कृत साहित्यकार हैं।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों को संगृहीत कर कुरुक्षेत्र के गीता भवन में सुरक्षित रखने में पंडित स्थानुदत्त शर्मा का विशेष हाथ है । 'हरियाणा की भाषा' नामक उनकी कृति भी प्रसिद्ध है जबकि संस्कृत में डाक्टरेट

करने वाले हरियाणा के परम विद्वान डॉ० राम गोपाल ने वैदिक भाषा व व्याकरण पर सराहनीय कार्य किया है। इन दोनों विद्वानों की सेवाओं पर हरियाणा सरकार ने इन्हें वर्ष 1968–69 तथा 1970–71 में क्रमशः सम्मानित भी किया ।

'वेद प्रवचन' तथा 'नेहरू चितरम' आदि की जीवन कथाओं को संस्कृत में सुन्दररूप से ढालने वाले आचार्य विष्णु मित्र ने गुरुकुल विद्यापीठ भैंसवाल और तत्पश्चात् कन्या गुरुकुल खानपुर में उपकुलपति पद पर रह कर भी संस्कृत साहित्य की परम्परा के विकास में भरपूर सहयोग दिया है। इन्हें वर्ष 1971-72 में राज्य सरकार ने सम्मानित भी किया है। आचार्य भगवान देव ने संस्कृत साहित्य संबंधी पुरातत्व वेत्ता की हैसियत से झज्जर में एक संग्रहालय का निर्माण किया है । इसी भाषा की सेवा के लिये वर्ष 1967–68 में उन्हें सम्मानित किया गया था ।पंडित भिक्षा राम शास्त्री ने भी संस्कृत में दर्जन पुस्तकों की रचना की है और इसी सेवा के लिये उन्हें 1975–76 में सम्मानित भी किया गया ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य

हिन्दी साहित्य को हरियाणा के अनेकों विद्वानों ने समय समय पर अपनी अमूल्य साहित्यिक सेवा से और भी धनी बनाया । इस राज्य की प्राचीन साहित्यिक परम्परा को आधुनिक काल में नव-साहित्यकारों ने केवल नया रूप, नयी चेतना ही नहीं दी अपितु नयी जान डाल कर इस परम्परा को सुदृढ़ एवं समृद्ध भी किया है।

पूर्वोल्लिखित साहित्यकारों के अतिरिक्त इस काल के प्रमुख हिन्दी रचनाकारों में 'हरियाणा केसरी' पुकारे जाने वाले श्री नेकी राम शर्मा एक प्रभावशाली लेखक थे । हिन्दी भाषा के अतिरिक्त उन्होंने बंगाली, मराठी, गुजराती तथा हरियाणवी में साहित्य रचना की है। हिन्दी भाषा के प्रति सराहनीय कार्य पं० मौलीचन्द शर्मा ने भी किया है ।पंडित दीनदयालु शर्मा के पुत्र पंडित मौलीचन्द शर्मा राज भाषा आयोग के सदस्य भी रहे हैं। इन्हीं के प्रस्ताव पर ही 'श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्थान' की स्थापना की गई ।वर्ष 1967–68 में राज्य सरकार ने इन्हें विशिष्ट भाषा सेवा पर सम्मानित भी किया ।

हिन्दी भाषा का पत्रकारिता व साहित्य रचना के रूप में विकास करने में सहायक पंडित श्री राम शर्मा ने 'हरियाणा तिलक' पत्र का वर्षों तक सम्पादन कार्य किया । 'हरियाणा का इतिहास', 'हरियाणा के नौरत्न' एवं 'हरियाणा के स्वतन्त्रता सेनानी' आदि कृतियों से बहुमूल्य साहित्य सेवा की जिस के लिए हरियाणा सरकार ने वर्ष 1976–77 में उन्हें सम्मानित भी किया । इसी तरह 'बुद्ध वचन', 'बुद्ध और अनुचर' और 'भिक्षु के पत्र' आदि पुस्तकों तथा शोध कार्यों से श्री भंदत आनन्द कोसल्यायन ने विदेशों तक हिन्दी भाषा का प्रसार कार्य किया। उन्हें सरकार ने सम्मानित भी किया था । इसी प्रकार श्री सत्यपाल गुप्त ने भी हरियाणा के हिन्दी साहित्य पर एक पुस्तक लिखी है जिसे साहित्य के क्षेत्र में काफी सराहा गया है।

सामाजिक अनुभूतियों एवं बुराइयों को मुखरित करने में हरियाणा के साहित्यकारों का विशेष प्रयत्न रहा है । अपने नाटकों, कथाओं और रेडियो प्रसारणों में श्री विष्णु प्रभाकर ने इन मुद्दों को गहराई से छुआ है । हिन्दी जीवनी साहित्य की 'आवारा मसीहा' पुस्तक उन की एक अभूतपूर्व सृष्टि है। श्री विष्म्भर नाथ कौशिक ने 'मां' उपन्यास और 'चित्रशाला', 'मणिमाला' एवं 'पेरिस की नर्तकी', कहानी संग्रहों में मुंशी प्रेम चन्द की भांति सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

हरियाणा के आधुनिक साहित्यकारों ने विगत समय के कई पहलुओं पर शोधपूर्ण कार्य करके साहित्यिक परम्परा को जीवंत रखा है। डॉ० बुद्ध प्रकाश और डॉ० के० सी० यादव ने अनेक अनछुए ऐतिहासिक विषयों पर गंभीर शोधपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करके नई पीढ़ी को एक दिशा दिखाई है । डॉ० किरण चन्द्र शर्मा ने 'केशव और उन के रीति काव्य' पर शोध ग्रंथ रचा है, जबकि डॉ० जय भगवान गोयल ने साहिब सिंह मृगेन्द्र के 'गुरु प्रताप सूरज' ग्रंथ को प्रथम बार पंजाबी से हिन्दी में नवरूप देकर प्रस्तुत किया । पिछले वर्षों में डा० जगदेव सिंह ने हरियाणवी भाषा पर शोध कार्य करना एक नई परिपाटी को जन्म दिया है।

सांस्कृतिक अध्ययन एवं काव्य सृजन प्रक्रिया पर भी आशानन्द वोहरा के "आसा की वार" एवं दो सौ से अधिक अन्य शोध निबन्ध छप चुके हैं। 'रोहतक नगर के प्राचीन रोमांस' तथा 'हरियाणा देवताओं की भूमि' पर अनुसन्धान भी किया है। अन्य साहित्यकार श्री गरीब दास ने राज्य के संतों और महात्माओं पर कार्य किया है। लगभग बारह छात्र इसी पर शोध कार्य कर चुके हैं। डॉ० मनमोहन सहगल ने अपनी आलोचनात्मक कृतियों में गंभीर अध्ययन एवं शोध के आधार पर प्रमाणिक एवं महत्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं। इसी प्रकार डॉ० रणजीत सिंह ने संत निश्चलदास पर, डा० भीम सिंह मलिक ने लोक साहित्य पर उच्च स्तरीय शोध सामग्री प्रस्तुत करके साहित्य के भंडार को भरा है।

मर्मज्ञ विद्वान देवी शंकर प्रभाकर ने अपनी भिन्न-भिन्न सात कृतियों में हरियाणा लोक साहित्य एवं सांस्कृतिक इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। हाल ही में प्रकाशित उन की कृति "स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा एक ऐतिहासिक अध्ययन" ऐतिहासिक महत्व रखती है, जो समस्त देश में बड़ी चर्चा का विषय बनी है। प्रमुख हिन्दी साहित्यकार के नाते श्री प्रभाकर ने दस बाल पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त असंख्य हिन्दी कविताओं से हिन्दी और हरियाणवी के भंडार की अभिवृद्धि की है। अपने अनेक प्रेरणादायक नाटकों, सारगर्भित लेखों और चुटीले हास्य-व्यंग्य द्वारा आकाशवाणी के माध्यम से प्रभाकर जी ने लोक-साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है।

कई अन्य लेखकों ने भी इस काल में इस परम्परा को विकसित ही नहीं, सशक्त भी किया है। ओम प्रकाश आदित्य की "तोता मैना" "इधर भी गधे हैं" तथा "थर्ड डिवीजन" हास्य काव्य कृतियों ने इस विधा के महत्व को बढ़ाया है। अल्हड़ बीकानेरी तथा जैमिनी हरियाणवी ने हिंदी भाषा में काफी कुछ लिखा है। नवोदित लेखकों में श्रुति प्रकाश वाशिष्ठ, केशव चन्द्र बधावन, रमेश शालिहास तथा केवल कृष्ण पाठक आदि अन्य साहित्यकारों ने इस विधा के विकास में सहयोग दिया है।

काव्य में रुबाइयों के सफल प्रयोग का सजीव उदाहरण उदयभानु हंस द्वारा 'हिन्दी रुबाइयां" नामक संग्रह में मिलता है। धड़कन, सरगम तथा संत सिपाही जैसी प्रसिद्ध काव्य-कृतियों के साथ हंस ने 'हिंदी के प्रमुख कलाकार', 'निबन्ध रत्नाकर', 'साहित्य परिचय', संक्षिप्त नाटक आदि पुस्तकों से महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान दिया है। नाना रसमीनी काव्य रचनाओं के स्रष्टा श्री खुशी राम वाशिष्ठ ने बुद्ध चरित, मीरा बाई, गुरु नानक एवं गुरु गोबिन्द सिंह पर बहुत साहित्य लिखा है।

साहित्य-आलोचना एवं काव्य-रचना का समान विकास डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश' द्वारा बहुत उत्तम रीति से हुआ है। आलोचना पर एक दर्जन प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त 'तू युवक है', 'धरती पर उतरो' व 'दूब के आंसू' आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। इन्हें वर्ष 73-74 में राज्य सरकार ने सम्मानित भी किया था। उर्दू साहित्य का हिंदी में अनुवाद करके काव्य के नए दौर पर अयोध्या प्रसाद गोयलीय ने भी प्रशंसनीय कार्य किया है, जिन्हें वर्ष 68-69 में राज्य सरकार ने सम्मानित किया है। डा० जगनाथ नलिन ने 'यामिनी', 'धरती के बोल' आदि काव्य-कृतियों से इस विधा को विकसित किया है। इसी प्रकार ओम प्रकाश भारद्वाज ने भी पुरातन और नूतन का सुन्दर समन्वय करते हुए सुन्दर काव्य सृजन किया है। उनके प्राचीन संस्कृति सम्बन्धी निबन्धों ने भी सुधी पाठकों का ध्यान खींचा है।

आधुनिक कविता में कुछेक नए एवं ताजा-प्रयोग भी हुए हैं। श्री विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक' ने कथा, निबन्ध, नाटक एवं समीक्षा आदि की विविध विधाओं के कार्य सहित 'कुटिया का राजपुरुष' खंड काव्य में नयी भाषा शैली का सुन्दर प्रयोग किया है। चन्द्र त्रिखा का पुरस्कृत काव्य संग्रह 'पाषाण युग' तथा विष्णु रविम की पुरस्कृत 'नारों का अंधा शहर' कृति में इस नयी दिशा का आभास होता है। त्रिलोकी नाथ रंजन की काव्य पुस्तक 'जिंदगी के मोड़ पर' तथा डॉ० कृष्ण देव झारी, दीप चन्द निर्मोही, कृष्ण खन्ना, सुदर्शन पानीपती आदि की रचनाओं से इस

धारा का प्रवाह तेज हुआ है। फूल चन्द 'सुमन' ने केवल इस तरह की अपनी रचनाओं से ही नहीं अपितु प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन की गतिविधियों द्वारा भी नयी कविता के प्रसार का कार्य किया है। कृष्ण कुमार मदहोश ने कई सराहनीय आलोचनात्मक लेख एवं कथाएं लिखी हैं। उनकी कविताओं में भी नव-उपमानों की सुन्दर गंध मिलती है ।

हिंदी कथा एवं उपन्यास लेखन पर भी इस प्रदेश में निरंतर कार्य हो रहा है। प्राचीन काल से आज तक कहानी का अपना ही एक विशेष महत्व है। डॉ० रत्न चन्द्र शर्मा ने देश विभाजन के उपरान्त हरियाणा में इस विधा पर 'शिवरी', 'चारुदत्त', 'निषाद राजा' और 'उपन्यास प्रेमचन्द' आदि की कथा एवं उपन्यास कृतियों से उल्लेखनीय कार्य किया है। मोहन चोपड़ा ने भी एक उपन्यासकार की हैसियत से 'बाहें' एवं 'नीड़ के आगे' उपन्यासों से हरियाणा के साहित्य में वृद्धि की है। बदलते परिवेश के अनुसार नव-चेतना एवं शक्ति का संचार करने वाली समसामयिक कथानकों पर आधारित कथाओं से इस प्रदेश की साहित्य-निधि में वृद्धि हुई है। मंजी हुई सरल भाषा में राकेश वत्स की कई ऐसी सम्मानित कहानियां हैं। उनके कुछ प्रकाशित उपन्यास भी ऐसे ही कथानकों पर आधारित हैं। डॉ० लीला धर वियोगी, क्षेमेन्द्र गुलेरी तथा सुरेश भावुक आदि अन्य लेखकों की रचनाएं भी कम महत्व की नहीं ।

आज की कहानी में लौकिकता, स्वाभाविकता, यथार्थवादिता एवं विचारात्मकता पर अधिक बल दिया जाता है। प्राचीन कहानी स्वर्गलोग की कल्पना थी, जबकि आधुनिक कहानी हमें धरती के सुख-दुख का स्मरण कराती है। प्रसिद्ध कथाकार स्वदेश दीपक की विभिन्न कहानियों में राष्ट्र की सामाजिक परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण मिलता है । अम्बाला के पृथ्वीराज मोंगा की 'प्लास्टिक के गुलाब' सम्मानित कथा संग्रह तथा 'सूना घोंसला' उपन्यास राज्य सरकार सम्मानित भी कर चुकी है। रमेश बत्तरा ने भी सुन्दर कहानियां लिखी हैं । इनकी कहानियां सामान्य पाठकों के हृदय को शांत करने के अतिरिक्त उनके मस्तिष्क को कुरेदने में भी सहायक हैं। पृथ्वी राज अरोड़ा, सुदर्शन सागर, प्रवीण बहल एवं ईश्वर चन्द्र आदि अनेकानेक युवा-लेखकों की रचनाओं में रागात्मक में न्यूनता न आकर किसी न किसी विचार व समस्या का अंकन हुआ है। गद्य और पद्य में समान रूप से लिखने वाले ओम प्रकाश भारद्वाज ने उच्च कोटि की साहित्य रचना की है। डॉ० रणजीत सिंह ने भी अपना अमूल्य साहित्यिक सहयोग विभिन्न कृतियों के माध्यम से दिया है।

अन्य उल्लेखनीय साहित्यकार हैं ओम प्रकाश तिखा, डॉ० यश गुलाटी, डॉ० कृष्ण मधोक, डॉ० कौशल कुमार धौम्य, डॉ० महाराज कृष्ण जैन, कृष्ण चन्द्र गोस्वामी, आनन्द रंक बंधु, भूरिश्रवा शास्त्री, आशा शर्मा इत्यादि। निश्चय ही इस प्रदेश में हिन्दी साहित्य पुष्पित-पल्लवित हुआ है। यह तथ्य इसके और भी उज्ज्वल भविष्य का साक्षी है।

आधुनिक उर्दू साहित्य

हरियाणा में अन्य भाषाओं के साथ-साथ उर्दू भाषा के साहित्य का भी परम्परागत विकास हुआ है। उर्दू साहित्य के प्रमुख लक्षणों एवं तत्वों की व्याख्या, भावों, विचारों या इतिवृत्त को व्यक्त करने की भाषा-शैली के सुन्दर रूपों से यह प्रदेश विभूषित हुआ है। भाषा इतिहास से नाना उर्दू विद्वानों के अतिरिक्त मौलाना हाली द्वारा उर्दू साहित्य को दिये महत्वपूर्ण योगदान का बोध होता है। सामान्य व्यक्तियों की भांति साहित्यकार का व्यक्तित्व भी मूलतः उसकी वंश परम्परा एवं पूर्वजों के व्यक्तित्व का मिश्रित अंश होता है। ठीक उसी तरह न केवल हाली अपितु उनके परिवार के अन्य सदस्य आज तक उर्दू साहित्य को समृद्ध करने में प्रयत्नरत हैं। ख्वाजा अहमद अब्बास, सालिका आबिद हुसैन बेगम, मुमताज मिर्ज़ा और जाहिदा जैदा आदि का सम्बन्ध केवल हरियाणा से ही नहीं, मौलाना हाली के परिवार से भी सम्बद्ध हैं ।

उर्दू साहित्य को आधुनिक युग में सशक्त एवं समृद्ध करने वाले पानीपत में जन्मे ख्वाजा अहमद अब्बास हरियाणा सरकार से सम्मानित होने के अतिरिक्त चलचित्र के क्षेत्र में राष्ट्रपति पुरस्कार पा चुके हैं। अबाबील, एक लड़की, मुसाफिर की डायरी, मैं कौन हूं, पांवों में फूल और गेहूं में फूल आदि की प्रसिद्ध कृतियां केवल भारत में ही नहीं, अनूदित होकर विदेशों में भी विख्यात हुई हैं। सराहनीय साहित्यिक सेवा के साथ अंग्रेज़ी की पत्रकारिता में सिद्धहस्त

प्रव्वास एक उच्चकोटि के फिल्म-निर्माता भी हैं। कथा, उपन्यास, लेख-निबन्धों के अतिरिक्त नाटक और शायरी का भी उर्दू में समुचित विकास हुआ है। टोहाना जिला हिसार के नौबहार साबिर की राजकुमारी, ललिता, पयामे बेदारी, कृष्ण दर्शन, कारवां ख्यालों के, लहू तरंग आदि कृतियां काफी प्रसिद्ध हुई हैं। राज्य सरकार द्वारा वर्ष 1970-71 में उन्हें सम्मानित भी किया गया था।

उर्दू शायरी ने हरियाणा में महत्वपूर्ण स्थान पाया है। इस भाषा की अनुभूति स्वतः एक अखण्ड आत्मिक व्यापार है, जिसे किसी दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक या साहित्यिक व्यापार या वाद से जोड़ने की आवश्यकता नहीं। यहां के साहित्यकारों ने शायरी का प्रयोजन केवल मनोरंजन या इस से दूर भागना नहीं माना वरन् भावों-विचारों की गहनता में खोकर नए आयामों के प्रस्तुतीकरण के प्रयास किये हैं। जैमिनी सरशार की गणना भारत के उस्ताद शायरों में की जाती है। जजबाते सरशार, नगमाते सरशार, निगारशाते सरशार, तसुर्राते सरशार आदि कृतियों से उर्दू शायरी को समृद्ध किया है। इसी तरह शिवप्रसाद आबेद वाशिष्ठ ने शोला-ए-तिश्नगी, गजले राना, रूप-रस आदि पुस्तकों से साहित्यिक सेवा की है। इन दोनों को राज्य सरकार ने वर्ष 1971-72 तथा 1973-74 में सम्मानित भी किया है।

कविता या शायरी एक दिव्य अनुभूति प्रदान करने वाली शक्ति है। अमीर चन्द बहार आदि उर्दू अदब के कुछ अन्य ऐसे शायर हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं से पाठक-हृदय को विस्तृत करने का प्रयास किया है। इन्होंने ने कहानियों, उपन्यासों तथा शायरी की कई पुस्तकें लिखी हैं, जो कई भाषाओं में अनुदित हुई हैं। बहार अंग्रेजी में भी लिखते हैं। इन्होंने कई अंग्रेजी रचनाओं का पद्य-बद्ध सुन्दर अनुवाद किया है, जिनमें नसीमे मगरिब प्रसिद्ध कृति है। बहार हरियाणा सरकार के सम्मानित साहित्यकार हैं। उत्तमचंद शरद ने 'कांटे और फूल' पुस्तक की रचना से अपना सहयोग दिया है।

इस भाषा की साहित्यिक परम्परा को जहां इस प्रदेश के साहित्यिक वर्ग ने बनाए रखा है, वहां सरकार ने भी इसे प्रोत्साहित करने हेतु समय समय पर पग उठाए हैं। यहां उर्दू ज्ञाताओं की इच्छानुसार इस भाषा के प्रसार व विकास के लिये शिक्षा क्षेत्र में भी प्रबन्ध किये गये हैं। "हाली" नाम से भाषा विभाग द्वारा इस भाषा की सर्वोत्तम कृति को पुरस्कार देने की भी व्यवस्था है। इसी पुरस्कार के प्राप्त करने वाले विमल कृष्ण 'अश्क' ने आंसू-आंसू, गीत वतन के, दुख के फूल तथा आईना और परछाई पुस्तकों से महत्वपूर्ण कार्य किया है। एक अन्य उर्दू लेखक तवस्सुम अलीपुरी ने हरियाणा में पुनः बसने पर 'साप्ताहिक रोशनी' के सम्पादन सहित चार पुस्तकों की रचना करके उर्दू भाषा को समृद्ध किया है। रामकृष्ण तमन्ना ने नक्शे तमन्ना नाम के मजमूए की रचना करके उर्दू साहित्य में वृद्धि की है। इस पर इन्हें हरियाणा सरकार से भी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

नयी पीढ़ी के उर्दू लेखकों में से बलबीर सिंह राठी ने पुरस्कृत कृति 'कतरा-कतरा' से साहित्य सेवा की है। जबकि प्रताप सिंह राणा गन्नौरी ने कालिदास के संस्कृत काव्य 'मेघदूत' का उर्दू अनुवाद किया है। सतनाम सिंह खुमार ने अध्यापन के साथ साथ अपनी सशक्त उर्दू रचनाओं से नए प्रयोग किये हैं। इसी तरह भगीरथ लाल जख्मी हिसार ने दास्ताने मजदूर तथा सरशक पुस्तकों से उर्दू शायरी में व्यापक दायरे का प्रयोग किया है। दिवान तेजवंत साहिर सुनामी तथा अजमल खां, सरस्वती शरण कैफ़ का नाम हरियाणा के उर्दू साहित्य में विशेष महत्व रखता है। श्री कैफ़ ने उर्दू के प्रसिद्ध शायर दर्द, सौदा, नजीर, जौक, अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, फानी आदि पर दजनों पुस्तकें लिखने के अतिरिक्त 'ट्रिब्यून' के सम्पादकीय विभाग में उच्चस्तरीय पत्रकारिता कार्य भी निभा रहे हैं। महेन्द्र प्रताप चान्द की पुस्तक हर्फे आखिर तथा नारायण दास तालिब पानीपती की कई रचनाएं भी उल्लेखनीय हैं।

स्वर्गीय नून अजमी ने अपने अमूल्य कार्य से इस भाषा के साहित्य पर एक अमिट छाप छोड़ी है। कई वर्षों से लिखने वाले बाबा गोपाल कृष्ण मगमूम ने अपनी रचनाओं से प्राचीन एवं आधुनिक लेखन में सामंजस्य स्थापित किया है। शोला-आवाज प्रशंसित कृति के रचियता ज्वाला प्रसाद शाही ने अपनी रचनाओं से मानव हृदय-स्पर्श करने का प्रयास किया है। इसी तरह के कुछ अन्य लेखक भी इस भाषा की समृद्धि में अपना भरपूर योगदान दे रहे हैं।

आधुनिक हरियाणवी साहित्य

हरियाणा प्रदेश की मूल भाषा हरियाणवी पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा निकटवर्ती राजस्थानी क्षेत्रों में भी बोली जाती है। हरियाणवी भाषा में गद्य-पद्य दोनों तरह के साहित्य रचे जाने की एक प्राचीन परम्परा रही है। प्राचीन साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने से विदित होता है कि विगत काल में भी कई जैन-मुनियों ने हरियाणवी में अपने काव्यों की सुन्दर रचना की है। अनेक संत-कवियों ने इसी भाषा में सशक्त दोहों, पदों, छंदों और गीतों से साहित्य में वृद्धि की है। इसमें संत गरीब दास, सहजोबाई, चरणदास तथा जैन कवि भीख के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपनी अमूल्य साधना से हरियाणवी भाषा को समृद्ध किया है। सूफी संतों ने भी हरियाणवी भाषा में बहुत अच्छे काव्य-प्रस्तुत किये हैं। एक युग था, जब पानीपत सूफी संतों का केन्द्र रहा। दार्शनिक बू-अली शाह कलंदर जैसे कई सूफी संतों ने इस क्षेत्र में रह कर इसी भाषा में सुन्दर कवितायें लिखी हैं।

आधुनिक काल में हरियाणवी भाषा का विकास समय की गति के साथ बहुत हुआ। आरम्भ में ही पंडित नेकी राम शर्मा तथा शंकर दास जैसे कवियों ने इस सम्बन्ध में अपना सृजनात्मक सहयोग दिया। इनकी कविताओं, भजनों तथा गीतों ने जन-मानस के हृदय-पटल पर विशेष स्थान पाया है।

हरियाणवी लोक-नाटक का विकास भी राज्य के लोक साहित्य एवं संस्कृत के अनुरूप ही लोक-गीतों के साथ समुचित रूप से हुआ है। प्रसिद्ध नाटककार एवं कवि पंडित लखमी चंद ने इस भाषा को समृद्ध बनाने में बहुत बड़ा काम किया है। उन्होंने सैकड़ों प्राचीन कथाओं और पुरातन प्रसंगों को लेकर सशक्त साहित्य की रचना की है। इतना ही नहीं, हरियाणवी लोकगीतों को एक आकर्षक रूप देकर उन्होंने जन-भावनाओं को प्रतिबिम्बित किया है। रंगमंच के लिये उन द्वारा लिखे-अनेकों नाटक और स्वांग केवल हरियाणा प्रदेश में ही नहीं अन्य राज्यों में भी लोकप्रिय हुए।

विगत तीस वर्षों से हरियाणा की इस भाषा को नया निखार देने और इसे एक श्रेष्ठ साहित्यिक स्तर पर खड़ा करने के लिये बहुत प्रशंसनीय कार्य हुआ है। इस अवधि में हरियाणवी भाषा को जन-भाषा से साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित करने के भरसक प्रयास किये जाते रहे हैं। यही कारण है कि हरियाणवी भाषा आज अपने साहित्यिक स्वरूप में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के समान उभर आयी है। इस अवधि में इस भाषा का नाटक, कहानी, उपन्यास तथा काव्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। समय की गति के साथ इस भाषा में हास्य-व्यंग्य में भी निखार आया। अतः यह विधा अब केवल एक फूहड़ मजाक और मसखरी का मनोरंजनीय रूप न रह कर शिक्षाप्रद स्फुट हास्य के रूप में हमारे समक्ष आई। जन-शिक्षा के रूप में पाठकों के मन-मस्तिष्क में कोई बात कहने-समझाने हेतु इस ढंग का प्रयोग होने लगा ताकि बात अप्रिय भी न लगे और प्रभावशाली भी हो।

हरियाणवी भाषा के नए रूप को निखारने और सशक्त बनाने में देवीशंकर प्रभाकर का बहुत बड़ा हाथ है। बाल्यकाल से ही हरियाणवी लोक गीतों को एकत्रित करने के साथ इन्होंने इसी भाषा की लोक-धुनों पर अनेक गीत लिखे और गाए हैं। हरियाणा राज्य में घूम-फिर कर राज्य के विभिन्न अंचलों की लोक-संस्कृति को निकट से देख-परख कर इन्होंने हरियाणवी लोक साहित्य एवं संस्कृति पर विद्वतापूर्ण कार्य किया है। इसी भाषा में लिखे 'किसान का बेटा' और 'धरती का बेटा' नामक दो उनके विशिष्ट नाटक हैं। फिर अब तक लिखी उनकी अढ़ाई सौ से अधिक हरियाणवी कविताएं विशेष लोकप्रियता पा चुकी हैं। हरियाणवी लोक साहित्य व संस्कृति पर प्रकाशित प्रभाकर की सात पुस्तकें हैं। 'हरियाणा के लोक गीत', 'हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन', 'प्राचीन हरियाणा' तथा 'स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा का इतिहास' उनकी कुछेक अन्य प्रसिद्ध कृतियां हैं। हिन्दी के अतिरिक्त हरियाणवी भाषा में इनके सारगर्भित हल्के-फुल्के हास्य ने इस भाषा को और भी समृद्ध बनाया है।

सामाजिक उत्थान, राष्ट्रीय उन्नति तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महानता का दिग्दर्शन भी हरियाणवी भाषा के नव साहित्य में मिलता है। दस वर्ष तक आकाशवाणी में निरन्तर हरियाणवी भाषा पर प्रसारण-लेखन

कर राजा राम शास्त्री ने टंडन के सहयोग से "हरियाणा लोक मंच" की स्थापना करके सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कार्य किया है। अनेकों नाटकों, लोकगीतों तथा 'बूटा सिंह' एवं 'मां-बेटा' लोक कथाओं के चलचित्रों के अतिरिक्त हरियाणवी भाषा में 'झाड़ू फिरी' नाम से प्रथम हरियाणवी उपन्यास भी उन्होंने लिखा। एक अन्य उपन्यास 'चन्द्रावली' तथा 'अग्रोहा' शोधकृति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई है। हरियाणवी भाषा की अमूल्य सेवाओं के स्वरूप उन्हें प्रथम हरियाणवी लेखक के रूप में सम्मानित भी किया गया है। अन्य लेखक जैमिनी हरियाणवी ने भी हरियाणा की प्राचीन मुद्राओं एवं शिलालेख-सम्बन्धी खोज के साथ साथ इतिहास, संस्कृति एवं कला पर कई ग्रंथ लिखे हैं। आजकल हिंदी और हरियाणवी में समान रूप की ओजस्वी काव्य रचनाओं से भाषा को समृद्ध कर रहे हैं। हास्य-व्यंग्य में उनकी कला महत्वपूर्ण है। डॉ० नानक चन्द शर्मा ने हरियाणा की संस्कृति, कला और परम्पराओं पर कई शोधपूर्ण लेखों से इस भाषा की साहित्यिक परम्परा को विकसित किया है। हरियाणवी के उद्भव एवं विकास पर शोध ग्रंथ लिखकर ही उन्होंने पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है।

इस क्षेत्रीय भाषा में नाट्य, लेखों तथा काव्य परम्परा को विकसित करने में गरमा, कृष्ण लाल हमदर्द एवं कुन्दन गुड़गांवी आदि साहित्यकारों का भी महत्वपूर्ण सहयोग है। पानीपत के दीपचन्द 'निर्मोही' तथा कृष्ण दत्त 'तूफान' द्वारा इस सम्बन्ध में सफल प्रयास किया गया है। सभाओं-गोष्ठियों में अपनी रचनाओं के माध्यम से इन्होंने इस भाषा का प्रसार किया है।

अल्हड़ बीकानेरी और ओम प्रकाश आदित्य भी हरियाणवी साहित्यकार होने के नाते इस क्षेत्र की भाषा पर निरन्तर साहित्य रचना कर रहे हैं। हिन्दी से मिले-जुले कुछ नए उपमानों के प्रयोग से इन साहित्यकारों ने भाषा को सुसभ्य, सुसज्जित एवं समृद्ध किया है। लोक-गीतों और सांगों को संकलित एवं 'टेप' करके श्री के० सी० शर्मा ने यहां की जन भाषा में जन-भावों का समुचित प्रतिनिधित्व किया है। पंडित लखमी चन्द द्वारा लिखित कई सांगों पर के० सी० शर्मा ने प्रशंसनीय कार्य किया है, जिससे हरियाणवी भाषा सशक्त एवं समृद्ध हुई है। दीप चन्द निर्मोही और कृष्ण दत्त तूफान ने भी हरियाणवी में मौलिक साहित्य-सृजन करके ख्याति अर्जित की है।

नवोदित हरियाणवी कवियों में हरफूल हरियाणवी तथा रिसाल रोहतकी आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

निश्चय ही हरियाणवी भाषा में रचा जा रहा साहित्य इस प्रदेश के जन मानस को उजागर करता है और अपने भीतर उज्ज्वल संभावनाएं संजोये हुए है।

आधुनिक पंजाबी साहित्य

हरियाणा जैसे नव-निर्मित हिंदी भाषी राज्य में पंजाबी भाषा के साहित्य का विकास-प्रसार रुका नहीं, कम नहीं हुआ, अपितु अपनी गति पकड़ता हुआ समय के कठोर थपेड़ों से गुजरकर और भी निखरा है। पंजाबी भाषा को प्राचीनकाल में भाई संतोख सिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज' रच कर हरियाणा को गौरवान्वित किया। इसी तरह अनेकों अन्य लेखकों ने इस भाषा के साहित्य का विकास किया है।

आधुनिक युग में पंजाबी भाषा की समृद्धि के लिये कई साहित्यकारों ने भरपूर सहयोग दिया है। विगत अट्ठाईस वर्षों से निरंतर पंजाबी काव्य विधा पर कार्य करते हुए दयाल चन्द मिगलानी ने 'बलबे दी वडया' और 'ननकाने दा चन्न' संग्रहों से इस भाषा को समृद्ध किया है। वर्ष 1976-77 में राज्य सरकार द्वारा उन्हें सम्मानित भी किया गया है।

हिम्मत सिंह सोढी ने अपनी 'गितो-मितो' और 'अगामगम' काव्य कृतियों से तथा तारा सिंह 'कोमल' ने अपनी कोमलवाणी से इस भाषा को समृद्ध किया है। रमेश आजाद तथा सरदार हरभजन सिंह भी कई पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक योगदान दे रहे हैं। डा० ईश्वर सिंह तांब ने गुरुमुखी लिपि में शोध करके डॉक्टरेट की उपाधि लेने के अतिरिक्त 'मकड़ी दे जाले' उपन्यास तथा 'पतझड़ दी पीड़ा' काव्य संग्रह आदि कृतियों में जीवन की विविधता को चित्रित करने का प्रयास किया है।

पंजाबी काव्य के विषय वस्तु में यथार्थ का उज्ज्वल चित्रण कृष्ण कुमार मदहोश ने अपनी रचनाओं में किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के साथ 'मदहोशियां' नाम से उनकी काव्य-कृति में पंजाबी काव्यात्मक गुणों का बोध होता है।

हरियाणा मूल रूप से गैर-पंजाबी भाषी क्षेत्र होते हुए भी, पंजाबी भाषा के विकास में पीछे नहीं हटा। यहां इस भाषा की प्रगति के लिये सरकार, साहित्यकारों तथा जन-साधारण ने मिलकर सहयोग दिया है। भाषा विभाग हरियाणा द्वारा भी पंजाबी भाषा के नवोदित साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने के लिये पुरस्कृत करने की परिपाटी है।

त्रिलोचन सिंह अणखी की पुस्तकें 'सवेर' और 'चानना' तथा कुलदीप सिंह 'कमल' की रचनाओं से यह विकास क्रम और भी दृढ़ हुआ है। इसके अतिरिक्त आत्मजीत सिंह, हरमहेन्द्र सिंह, राज शर्मा और सुखेन्द्र आदि युवा लेखक गत कई वर्षों से निरंतर साहित्य साधना कर रहे हैं।

उक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि जहां नव-गठित यह राज्य आर्थिक, औद्योगिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अपना नाम पैदा कर रहा है, वहां साहित्यिक-क्षेत्र में भी बराबर अग्रसर है। आज के हरियाणा के साहित्यकारों की गति में लक्ष्य पूर्ति की चाह है और मन-मस्तिष्क में नव-प्रभात का उजाला। वह अपनी सुनहली परम्परा को जानता है और उसके अनुरूप ही नया साहित्य रचने में तल्लीन है ताकि नये हरियाणा की सच्ची तस्वीर उभारी जा सके।

हरियाणा
कृषि
विश्वविद्यालय
हिसार

खेती की
आधुनिक
विधियों का
कमाल ↓

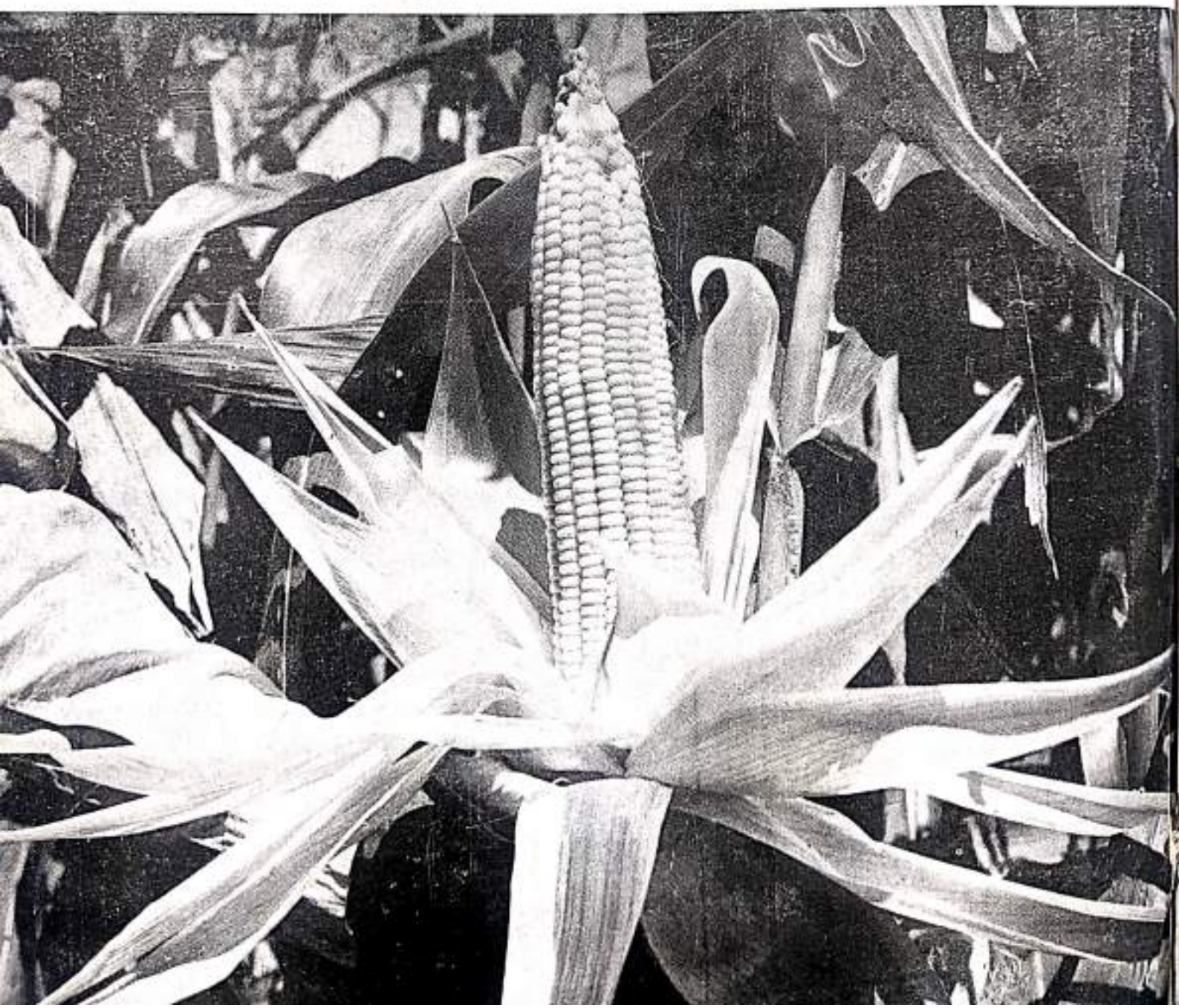

एशिया,' 72 प्रदर्शनी में हरियाणा मण्डप

दुग्ध संयंत्र, जीन्द

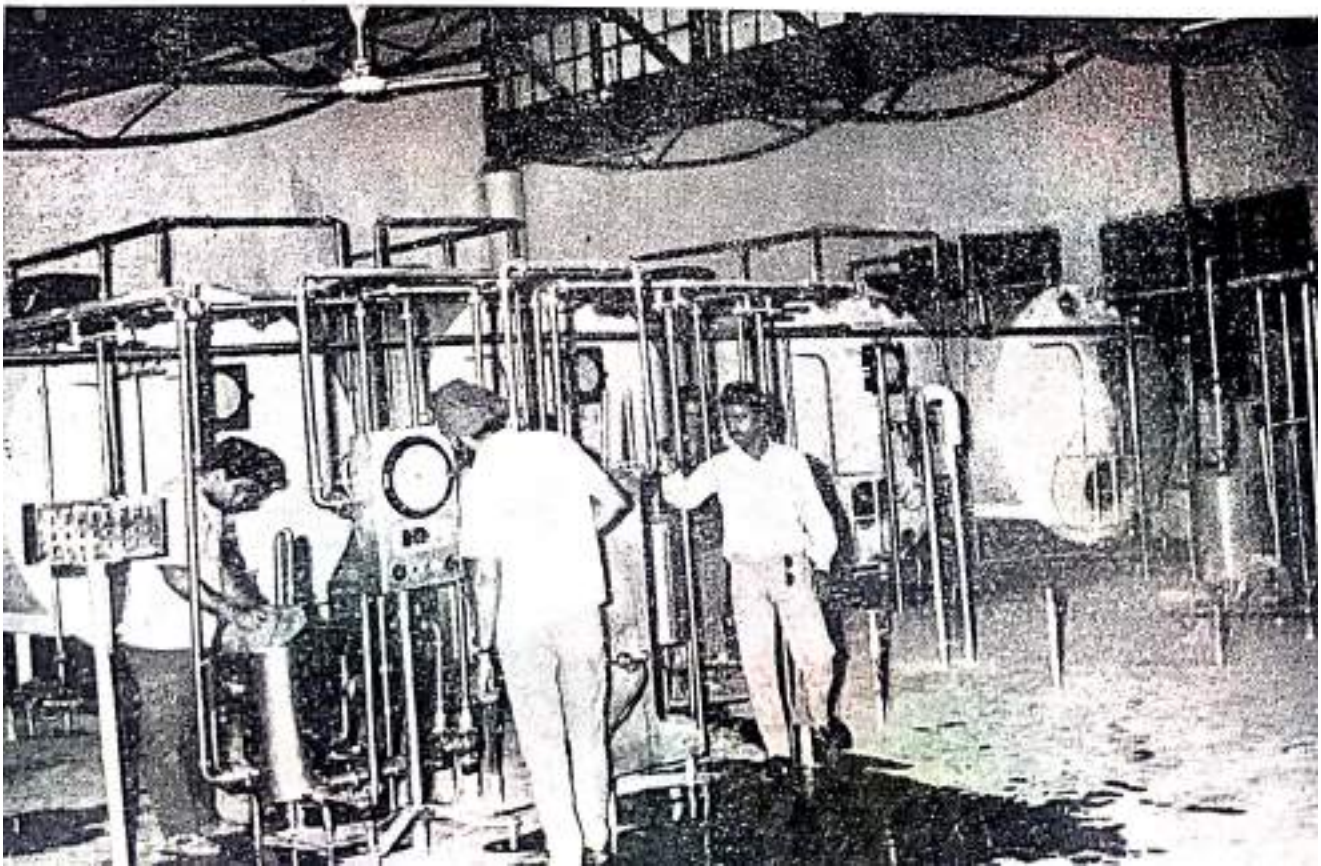

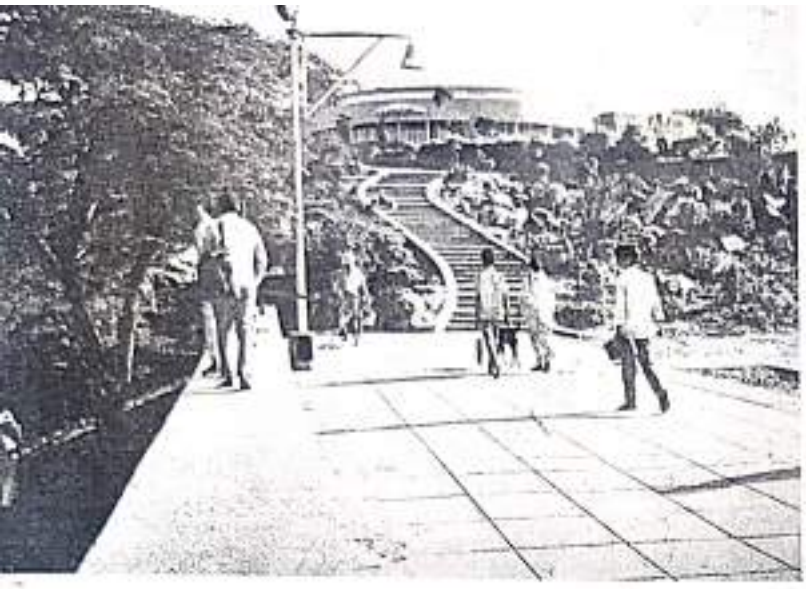

बड़खल झील पर बना, मयूर रेस्तरां

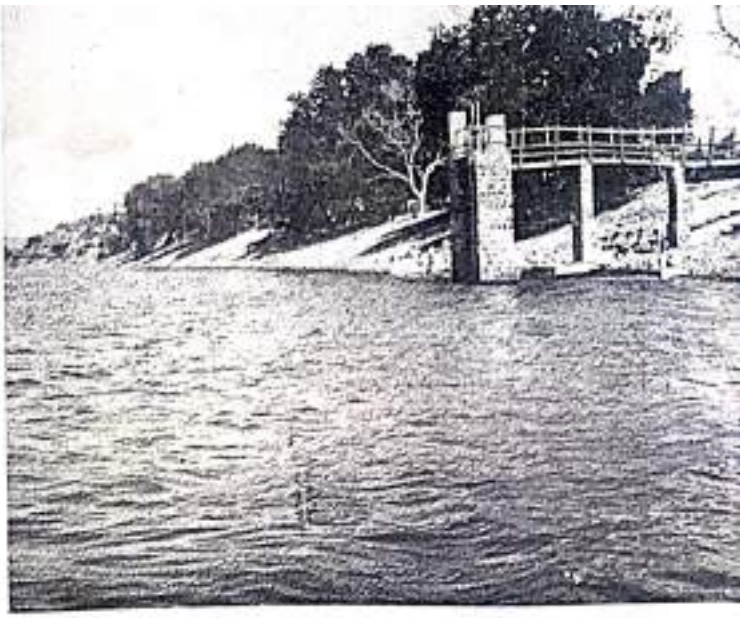

बड़खल झील का एक दृश्य

पर्यटक कुटीर—बड़खल झील

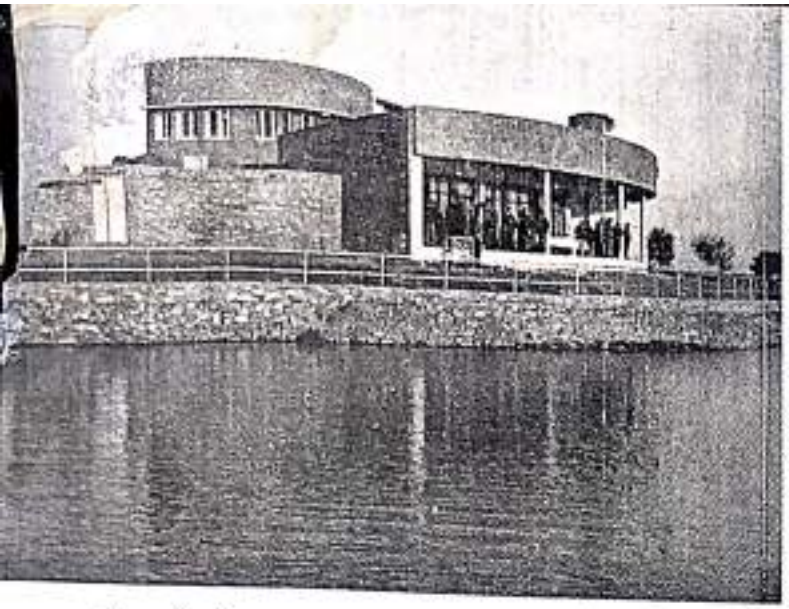

↑ कर्ण झील पर बना ह्विसलिंग टील रेस्तरां

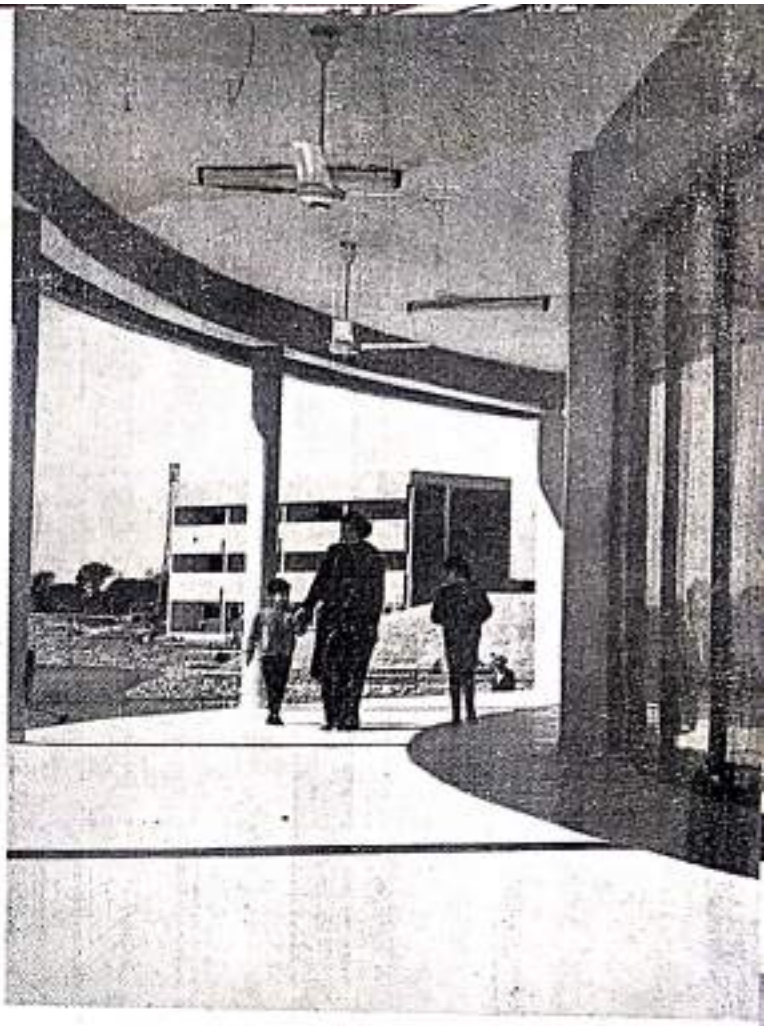

→ कर्ण झील के रेस्तरां का एक और दृश्य

↓ ओएसिस, कर्ण झील कॉम्पलेक्स

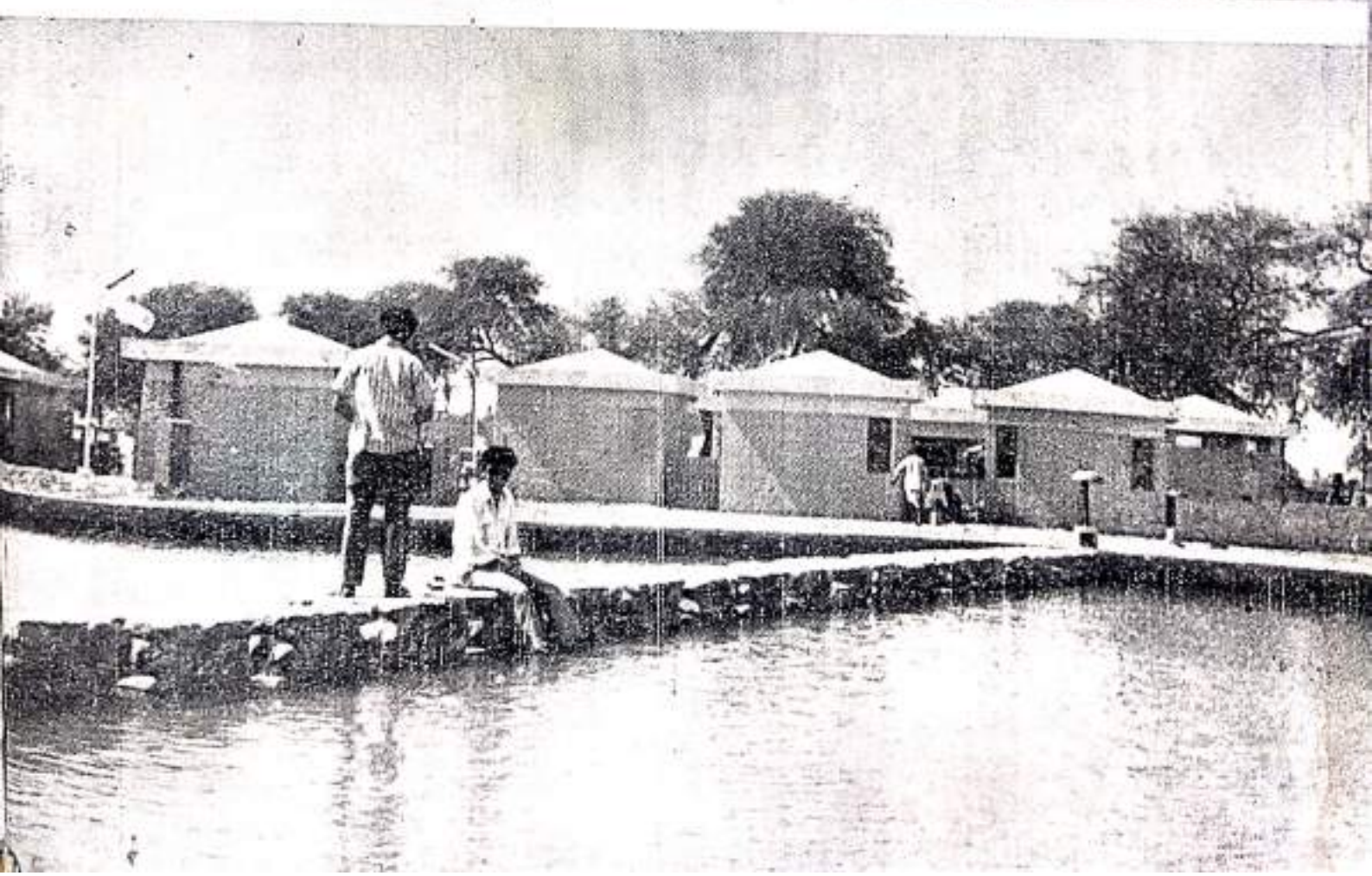

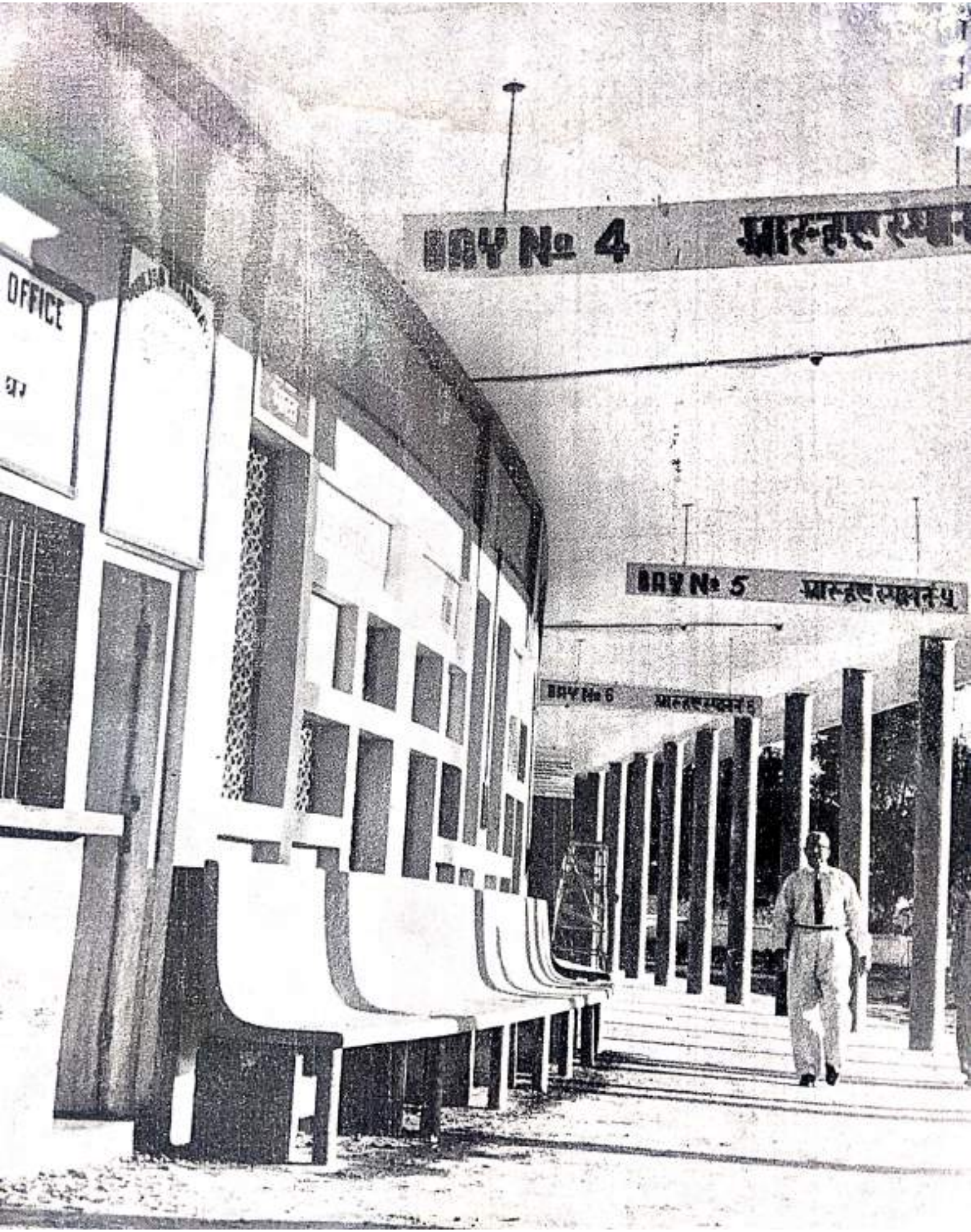
OFFICE
BAY No 4
BAY No 5
BAY No 6

↑ 'ओवर ब्रिज', हिसार

↓ घग्घर नदी पर बना पुल

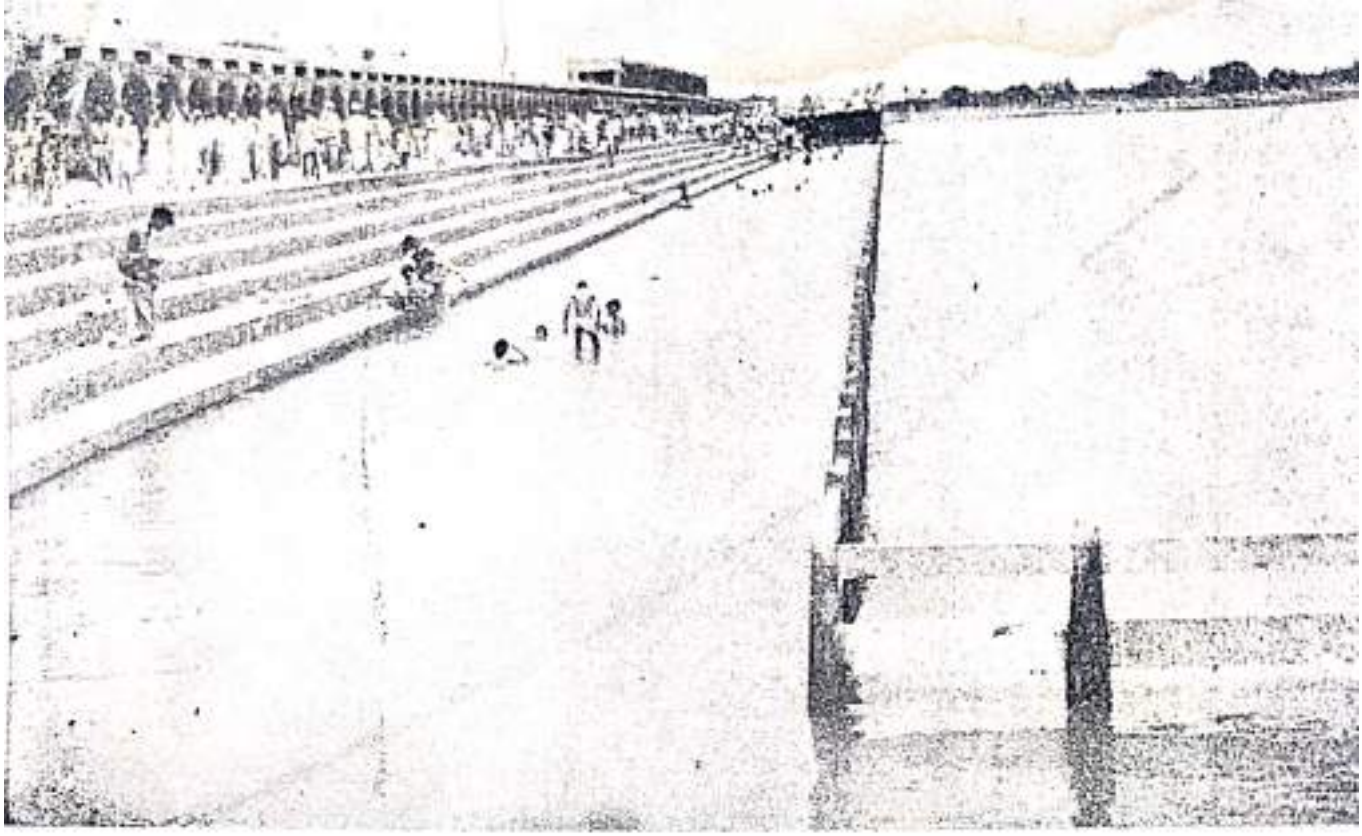

जीर्णोद्धार के बाद कुरुक्षेत्र का ब्रह्म सरोवर

चलता फिरता अस्पताल

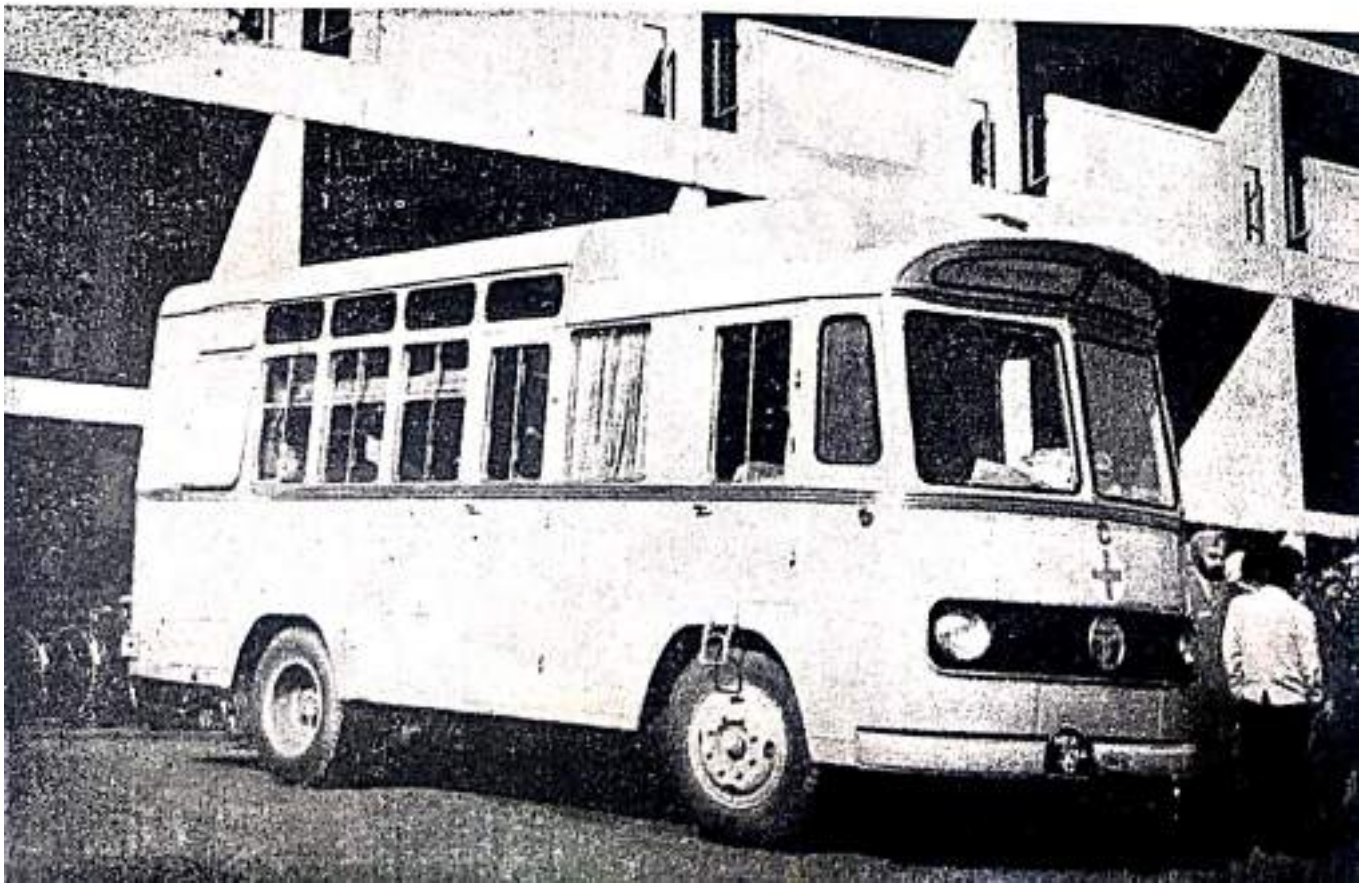

लेखक परिचय

डॉ० प्रभाकर माचवे

बहु भाषा विद् डॉ० प्रभाकर माचवे भारत के एक वरिष्ठ कवि, लेखक, कथाकार और आलोचक हैं। इनका जन्म 1917 में ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। इन्होंने दर्शन शास्त्र और अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. और हिन्दी में पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त की हुई है। ये 11 वर्षों तक प्राध्यापक, 6 वर्षों तक आकाशवाणी में और 21 वर्षों तक साहित्य अकादमी दिल्ली में कार्यरत रहे हैं। मार्च 1976 में अकादमी के मन्त्री के पद से सेवानिवृत हुए। सम्प्रति भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला में अभ्यागत पार्षद हैं।

इस के अतिरिक्त श्री माचवे अमरीका के दो विश्वविद्यालयों में भारतीय साहित्य के प्राध्यापक तथा केन्द्रीय संघ लोक सेवा आयोग में दो वर्षों तक विशेषाधिकारी भी रहे हैं। इन की अब तक अंग्रेजी में 12, हिन्दी में 59 पुस्तकें विभिन्न विधाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इन्हें रूसी सरकार ने 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' और उत्तर प्रदेश सरकार ने 'तीस-चालीस-पचास' उपन्यास पर पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया है।

डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन'

छायावादी एवं छायावादोत्तर युग के वरेण्य कवि डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन' का जन्म 27 नवम्बर, 1907 को इलाहाबाद में हुआ। इन्होंने इसी नगर में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर एम.ए. (अंग्रेजी) तक उच्च शिक्षा प्राप्त की और बाद में वाराणासी के ट्रेनिंग कालिज से बी. टी. की। बाद में 1954 में केंब्रिज विश्वविद्यालय, लन्दन से महाकवि कीट्स पर पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

कविवर बच्चन का जीवन बहुत संघर्ष का जीवन रहा। इन्होंने सर्वप्रथम 'पायोनियर' के संवाददाता के रूप में कार्य आरम्भ किया था। इस के बाद ये 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग में चले गए। इस के बाद स्कूल अध्यापक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के व्याख्याता, आकाशवाणी में हिन्दी प्रोड्यूसर, विदेशमन्त्रालय में विशेषाधिकारी आदि विभिन्न उत्तरदायित्व—पूर्ण पदों पर रहे हैं। राष्ट्रपति ने इन की साहित्यिक सेवाओं को स्वीकारते हुए इन्हें राज्य सभा का सदस्य भी मनोनीत किया था। इन्होंने भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया।

डॉ० बच्चन ने हिन्दी काव्य जगत में मधुशाला से प्रवेश किया था। इस के बाद आज तक इन के पद्य और गद्य के पचास से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में प्रकाशित इन की आत्म कथा के दो खण्ड इस विधा के साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। मधुशाला, निशा निमन्त्रण, आकुल अन्तर, मिलन यामिनी धार के इधर-उधर आदि इन की प्रसिद्ध काव्य कृतियां हैं। इन के काव्य ग्रन्थों पर इन्हें देश विदेश से कई पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं अतः, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ये भारतीय काव्य जगत की एक विशिष्ट विभूति हैं और इनका काव्य सदा सर्वदा जन-मानस को अभिभूत करता रहेगा।

डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'

संघर्ष शील कवि, आलोचक और इंटरव्यू विधा के प्रवर्तक साहित्यकार डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश' का जन्म उत्तर प्रदेश की तहसील मथुरा के गांव 'बरीका नगला' (सुरीका माजरा) में 22 जनवरी, 1915 को और निधन कुरुक्षेत्र में 5 फरवरी, 1975 को हुआ।

डॉ० कमलेश ने माध्यमिक शिक्षा (मिडल, हिन्दी और उर्दू) मिढाकुर से उत्तीर्ण की । इस के बाद बी. टी. सी. (हिन्दी-उर्दू) में उत्तीर्ण की और तदनन्तर विशारद और साहित्य रत्न की उपाधियां हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्राप्त कीं। इस के बाद पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से बी. ए. तथा प्रभाकर की उपाधियां प्राप्त कीं । इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम. ए. में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया और इसी विश्वविद्यालय से पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त की ।

आपने अपना जीवन एक होंकर से प्रारम्भ किया था और उसके बाद विभिन्न प्राइमरी तथा मिडल स्कूलों में अध्यापन कार्य किया और बाद में 'हिन्दी साहित्य विद्यालय, आगरा' और "बम्बई विद्यापीठ बम्बई" तथा "राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल सूरत" में अध्यापन कार्य किया । इस के बाद ये आगरा कालिज में हिन्दी के प्रवक्ता और बाद में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर और कालान्तर में प्रोफैसर नियुक्त हुए ।

डॉ० कमलेश के छः कविता संग्रह, 11 समीक्षा ग्रन्थ, छः अन्य ग्रन्थ तथा गुजराती तथा अंग्रेजी के 19 ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है । इन्होंने विशाल स्तर पर शोधार्थियों का निदेशन और कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है । भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार तथा हरियाणा सरकार ने इन्हें साहित्यिक सेवाओं के लिए सम्मानित एवं पुरस्कृत भी किया है ।

श्री उदय भानु 'हंस'

बहुभाषा विद् कवि एवं आलोचक उदय भानु 'हंस' का जन्म 8 जून, 1930 को जिला मुजफ्फर गढ़ के दायरा दीन पनाह (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था ।

श्री हंस ने आरम्भ में उर्दू व फ़ारसी में और फिर हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और पंजाबी का अध्ययन किया । इन्होंने सनातन धर्म संस्कृत कालिज मुलतान से शास्त्री तथा बाद में हंस राज कालिज दिल्ली से एम. ए. हिन्दी में उपाधि प्राप्त की ।

सर्वप्रथम रामजस कालिज में अध्यापन तथा बाद में लगभग 17 वर्षों तक राजकीय महा विद्यालय हिसार में हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे। सम्प्रति राजकीय महाविद्यालय भिवानी में हिन्दी विभागाध्यक्ष ।

श्री हंस ने अपना साहित्यिक कार्य संस्कृत कविता से प्रारम्भ किया था और बाद में उर्दू और हिन्दी में काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए । इन्हें संस्कृत साहित्य की सेवाओं के लिए 'कवि भूषणम्' तथा 'साहित्यालंकार' की उपाधियों से भी अलंकृत किया गया है ।

इन के 5 काव्य संग्रह और सन्त सिपाही शीर्षक से एक महाकाव्य, चार आलोचना ग्रन्थ तथा एक निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुका है ।

सन्त सिपाही महाकाव्य पर इन्हें उत्तर प्रदेश सरकार ने अखिल भारतीय निराला पुरस्कार तथा हरियाणा के भाषा विभाग ने प्रथम पुरस्कार से और शंख और शहनाई राष्ट्रीय गीत संग्रह पर पंजाब के भाषा विभाग ने प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया । आप हरियाणा के प्रथम 'राज्य कवि' के रूप में भी सम्मानित हो चुके हैं।

श्री खुशी राम शर्मा वाशिष्ठ

कोमल एवं मधुर भावनाओं के अमर गायक श्री खुशी राम शर्मा वाशिष्ठ का जन्म सन् 1918 ई. में हरियाणा के जिला रोहतक के महम नामक स्थान पर हुआ। इन्होंने सन् 1934 में प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और बाद में उच्च अध्ययन के लिए बिड़ला कालिज पिलानी में प्रविष्ट हुए । बाद में इन्होंने पंजाब विश्व विद्यालय से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की।

इन्होंने अपने सुदीर्घ अध्यापन जीवन में कई राजकीय महाविद्यालयों में प्राचार्य एवं जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य किया है । ये हरियाणा के राज्य कवि भी रहे हैं। सम्प्रति

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में महाविद्यालयों के निरीक्षक हैं।

ये शिक्षा काल से कविता लिखने में प्रवृत्त हैं। इन का प्रथम काव्य संग्रह सन् 1937 में प्रकाशित हुआ । सन् 1939 से 1945 के मध्य, 'बुद्ध चरित' 'मीरा बाई', 'गुरु नानक', 'गुरुगोबिन्द सिंह', तथा 'रण निमन्त्रण' शीर्षक से प्रकाशित काव्य कथाएं बहुत चर्चित हुई हैं। 'आंसू, फूल और अंगारे' काव्य संकलन पर सन् 1968 में इन्हें पंजाब सरकार से पुरस्कार मिला । अनेक स्कूल बोर्डों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित काव्य संकलनों में भी इन की कविताएं संकलित हैं। इन के काव्य में प्रेम एवं राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति हुई है । शोषित एवं पीड़ितों के प्रति सहज सहानुभूति तथा अत्याचार एवं अन्याय के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह भी इन के काव्य में मुखर हैं ।

श्री विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक'

बहुमुखी प्रतिभा श्री विश्व प्रकाश दीक्षित बटुक का जन्म 20 जनवरी, 1920 को उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर में हुआ था ।

श्री बटुक अपने संघर्षमय जीवन में एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता भी रहे हैं । इन्होंने 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लिया और छः मास की जेल यातना भोगी । इन की साहित्यिक गतिविधियों का कार्यक्षेत्र मेरठ, राजस्थान, लाहौर, शिमला, जालन्धर और दिल्ली नगर रहे हैं।

कर्मठ कवि, आलोचक, नाटककार और रूपक लेखक होने के साथ साथ ये एक दक्ष पत्रकार भी हैं। इन्होंने अनुराग, दैनिक विश्व बन्धु , दैनिक अमर भारत, दैनिक रामराज्य आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय विभाग में महत्व-पूर्ण पदों पर कार्य किया है । इस के अतिरिक्त इन्होंने वर्षों तक विभिन्न महाविद्यालयों में स्नातकोत्तर तथा स्नातक कक्षाओं में अध्यापन कार्य किया है । ये लगभग एक दशक से अधिक समय तक आकाशवाणी जालन्धर में तीन भाषाओं हिन्दी, उर्दू व संस्कृत के कार्यक्रम का नियमन व निर्देशन करते रहे हैं। सम्प्रति सैंट्रल ड्रामा, यूनिट, महा निदेशालय आकाशवाणी, नई दिल्ली में प्रोड्यूसर हैं ।

श्री बटुक की आज तक लगभग एक दर्जन कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं । गुरुगोबिन्द सिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्व, कामायनी, वस्तु और शिल्प, बिहारी की काव्य प्रतिभा, केशवदास, कुछ रूपक, कुछ एकांकी, कुटिया का राज पुरुष इन की बहुचर्चित कृतियां हैं।

श्री देवी शंकर प्रभाकर

हिन्दी एवं हरियाणवी भाषाओं के समर्थ कवि एवं लेखक श्री देवी शंकर प्रभाकर का जन्म 1 मई, 1929 को हरियाणा के जिला रोहतक के माइना गांव में हुआ । आपने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पैतृक गांव में तदनन्तर जाट हाई स्कूल रोहतक में प्राप्त की ।

श्री प्रभाकर ने अपना व्यावहारिक जीवन एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रारम्भ किया। सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में विश्वकर्मा माडल हाई स्कूल के प्रचार मन्त्री, इस्माइला गांव में समाज शिक्षा संचालक, सामुदायिक विकास परियोजना, सोनीपत में समाज शिक्षा संगठक, विभिन्न जिलों में तथा मुख्यालय में जिला लोक सम्पर्क अधिकारी/लोक सम्पर्क अधिकारी के रूप में कार्य किया । सम्प्रति लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा में उप निदेशक हैं ।

श्री प्रभाकर ने हरियाणा के लोक साहित्य पर विशेष कार्य किया है । इस संदर्भ में हरियाणा के लोक गीत , हरियाणा: एक सांस्कृतिक अध्ययन, हरियाणा: लोक गीतों की धरती, हरियाणा: लोक कथाएं, हरियाणा: लोक नाट्य, हरियाणा: लोक कहानियां विशेष रूप से चर्चित पुस्तकें हैं । हिन्दी और हरियाणवी में कई नाटक और रूपक प्रकाशित एवं प्रसारित हो चुके हैं। हाल ही में 'स्वतन्त्रता संग्राम और हरियाणा: एक ऐतिहासिक अध्ययन' एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है । इस के अतिरिक्त लगभग दो दर्जन बाल साहित्य की पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं ।

ये मूलत: एक कवि और सशक्त हास्य व्यंग्य के लेखक हैं। इस प्रकार गद्य और पद्य की प्राय: सभी विधाओं के सर्जक साहित्यकार के रूप में श्री प्रभाकर हरियाणा के एक अग्रगण्य लेखक हैं।

डॉ० बुद्ध प्रकाश

भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विद् डॉ० बुद्ध प्रकाश का जन्म सं. 1924 को जिला सहारनपुर में एक संभ्रान्त परिवार में हुआ और मृत्यु कुरुक्षेत्र में 20 जनवरी, 1972 को हुई।

इनका शिक्षा काल बहुत ही उज्ज्वल रहा। ये इण्टर से लेकर एम. ए., एल. एल. बी. तक सदैव राज्य भर में प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। इन्होंने 1947 में पी. सी. एस. की प्रतियोगी परीक्षा भी विशेष योग्यता से उत्तीर्ण की थी परन्तु सरकारी नौकरी एक दिन भी नहीं की। इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त की और इस के तीन वर्ष बाद इसी विश्वविद्यालय से प्राचीन पंजाब पर दो शोध प्रबन्ध लिख कर डी. लिट. की उपाधि प्राप्त की। वर्ष 1959 में ये बिना किसी साक्षात्कार के पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग में विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। वर्ष 1962 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग एवं निदेशालय में विभागाध्यक्ष एवं निदेशक नियुक्त हुए।

इन्होंने इतिहास सम्बन्धी कई मौलिक ग्रंथों का प्रणयन किया है। 'इंडिया एण्ड दि वर्ल्ड', भारतीय दर्शन, पूर्व एवं पश्चिमी एशिया का इतिहास, धर्म और संस्कृति इन की अति प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। इन के अतिरिक्त इन्होंने 500 से अधिक विभिन्न भाषाओं में भारतीय इतिहास, धर्म, दर्शन एवं संस्कृति सम्बन्धी शोध लेख भी लिखे हैं। ये लेख भारतीय पत्रिकाओं के अतिरिक्त विदेशों में भी प्रकाशित हुए हैं।

प्रो० वृन्दावन शर्मा

संस्कृत के विद्वान प्रो. वृन्दावन शर्मा का जन्म भेरा (अब पाकिस्तान में) नामक स्थान में वर्ष 1908 में हुआ। इन्होंने शास्त्री तथा एम. ए. एम. ओ. एल. तक शिक्षा, प्राप्त की है।

शिक्षा सम्पन्न करने के बाद ये लगभग 18 वर्षों तक आर. एस. डी. कालिज फिरोजपुर, 2 वर्षों तक मिलन कालिज रावलपिण्डी तथा लगभग 12-13 वर्षों तक राजकीय महाविद्यालय नाभा में वरिष्ठ प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे हैं। राजकीय सेवा से निवृत्त होने के बाद ये कुछ वर्षों तक एस. डी. कालिज बरनाला में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष रहे हैं।

प्रो. शर्मा की अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्होंने गुरु ग्रंथ साहिब का अंग्रेजी में पद्यबद्ध अनुवाद भी किया है। इन्हें आयुर्वेद तथा चिकित्सा पर असाधारण अधिकार प्राप्त है और मानसिक रोग चिकित्सक के रूप में आप प्रसिद्ध हैं।

प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल

मुद्रा शास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल का जन्म 1 जनवरी, 1906 को पंजाब के होशियारपुर जिला में पुरहीरां गांव में हुआ। इन्होंने माध्यमिक शिक्षा राजकीय हाई स्कूल होशियारपुर तथा स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा राजकीय महाविद्यालय लाहौर से प्राप्त की।

वर्ष 1931 में ये राजकीय महाविद्यालय लाहौर में प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हुए तथा 1947 तक स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं को पुराभिलेख शास्त्र, वेद तथा प्राचीन भारतीय इतिहास विषयों का अध्यापन करवाते रहे। विभाजनोपरान्त पहले जालन्धर, तत्पश्चात चण्डीगढ़ में पंजाब विश्वविद्यालय में एम. ए. कक्षाओं को उल्लिखित विषय पढ़ाते रहे। 1952 से 1959 तक ये पंजाब विश्व विद्यालय के संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष भी रहे। यहां से सेवानिवृत होने पर ये तीन वर्षों तक यू. जी. सी. की वृत्ति पर पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ के प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग में मुद्राशास्त्र, कला एवं स्थापत्य विषयों का अध्यापन करते रहे हैं।

श्री अग्रवाल का लेखन कार्य अधिकतर अंग्रेजी में है। विविध शोध पत्र-पत्रिकाओं में शोध-निबंधों

के प्रकाशन के अतिरिक्त इन्होंने 'कैम्ब्रेज हिस्टरी ऑफ इंडिया' के खंड–2 में 'स्कन्द गुप्त के उत्तराधिकारी,' तथा 'काम्परीहेन्सिव हिस्टरी आफ इंडिया' के तीन भागों में तीन लेख लिखे हैं। ये लेख हैं, उत्तर मौर्य कालीन राजवंश, कश्मीर का इतिहास ई. सं. 300 से 1003 तक तथा कश्मीर का इतिहास 1003-1320 तक। आज कल ये हरियाणा, पंजाब, हिमाचल, कश्मीर तथा साथ लगने वाले प्रदेशों के पुराभिलेखों का सम्पादन कर रहे हैं। ये अखिल भारतीय इतिहास सम्मेलन, भंडार का प्राच्य विद्या अनुसंधान तथा विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के भी आजीवन सदस्य हैं।

श्री मौलि चन्द्र शर्मा

हिन्दी संस्कृत के प्रख्यात विद्वान पं. मौली चन्द्र शर्मा का जन्म 1900 में हरियाणा के जिला रोहतक में झज्जर नगर में हुआ। ये हिन्दी व संस्कृत के उद्भट विद्वान व्याख्यान वाचस्पति पं. दीन दयाल जी के सुपुत्र हैं।

ये वर्षों तक अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बद्ध रहे हैं और इन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में प्रभूत योग दिया है। दिल्ली में प्रस्थापित लाल बहादुर शास्त्री विद्यापीठ इनके ही प्रयासों का फल है। ये भारत सरकार द्वारा गठित राज भाषा आयोग और राज भाषा विधाई आयोग के भी सदस्य रहे हैं।

श्री शर्मा 21 वर्ष की आयु से कलकत्ता समाचार तथा हिन्दी-संसार आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। आपके लेख गंभीर, चिन्तन एवं अनुभूति प्रधान होते हैं।

इनकी हिन्दी प्रचार-प्रसार एवं साहित्यिक सेवाओं को अंगीकार करते हुए वर्ष 1967-68 में इन्हें हरियाणा राज्य के विशिष्ट साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया गया।

डॉ० राम प्रकाश

कवि, आलोचक एवं शोध विद्वान डॉ० राम प्रकाश का जन्म 15 जुलाई, 1931 को जिला मुलतान (अब पाकिस्तान में) के जराही नामक गांव में हुआ। अब आप हरियाणा के जिला गुड़गांव में पलवल के स्थायी निवासी हैं।

इन्होंने एम. ए. पी एच. डी. (हिन्दी) तक उच्च शिक्षा प्राप्त की है। इन्होंने 'डिप्लोमा इन लिंग्विस्टिक्स' भी किया हुआ है। सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के पत्राचार पाठ्यक्रम एवं अनुवर्ती शिक्षा विद्यालय में प्राध्यापक हैं।

डॉ० राम प्रकाश एक सर्जक साहित्यकार होने के साथ साथ समर्थ शोध-विद्वान हैं। इनके आचार्य अमीरदास और उनका साहित्य, समीक्षा सिद्धांत, मीराबाई की काव्य साधना, आधुनिक कवि, हिन्दी साहित्य का इतिहास, गबन : एक अध्ययन, नहुष : एक अध्ययन, शुद्ध लेखन कला, राष्ट्रभाषा व्याकरण और रचना आदि शोध तथा समीक्षा ग्रंथ, पगडंडी, सींखचों के स्वर उपन्यास एवं कई कहानियां व कविताएं तथा 15 से अधिक शोध निबंध भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से हरियाणा का निर्गुण भक्तिकाव्य, हरियाणा के जैन कवि, मेवाती भाषा, सादुल्ला कृत मेवाती महाभारत, मेवाती के रहस्यवादी कवि भीक जी हरियाणा के अज्ञात कवि-उमादास आदि बहुचर्चित निबंध हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कथा कुंज, निबंध-नवनीत, शिवा बावनी, पुस्तकों का सम्पादन भी किया है।

डॉ० जयभगवान गोयल

मध्यकालीन एवं लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० जयभगवान गोयल का जन्म हरियाणा के जिला अम्बाला में छछरौली नामक गांव में सं. 1931 को हुआ। आपने पंजाब विश्वविद्यालय से एम. ए. (हिन्दी) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और कालान्तर में इसी विश्वविद्यालय से 'गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन' विषय पर पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। ये लगभग 20-21 वर्षों से स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ा रहे हैं और सम्प्रति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ रीडर हैं।

डॉ० जयभगवान गोयल द्वारा प्रणीत एवं सम्पादित लगभग 18 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन, गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, गुरु गोबिन्द सिंह : विचार और चिन्तन, वीर कवि दशमेश, गुरु

गोविन्द सिंह का वीर काव्य, रीति काल का पुनर्मूल्यांकन, मध्य युगीन काव्य : नया मूल्यांकन आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियां हैं।

प्रकाशित ग्रंथों के अतिरिक्त भारत की प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं में चिन्तनपरक शोध लेख निरंतर प्रकाशित होते रहते हैं। इनके समग्र रचित साहित्य में गंभीर अनुशीलन, अध्ययन एवं वैयक्तिकता परिलक्षित होती है।

स्वामी ओउमानंद सरस्वती

प्राच्य भाषा एवं पुरातत्व विद् स्वामी ओउमानन्द सरस्वती (आचार्य भगवानदेव) का जन्म दिल्ली के समीप नरेला गांव में 9 जून, 1911 को हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक तथा इससे आगे की शिक्षा ईसा स्कूल एवं कालिजों में प्राप्त की तथा अमर शहीद भगत सिंह को फांसी देने के विरोध में कालिज छोड़ दिया।

स्वामी जी ने अपना सामाजिक जीवन अछूतोद्धार के लिये रात्रि पाठशालाओं एवं सहभोजों से प्रारम्भ किया। इन्होंने हैदराबाद में आर्यसमाज द्वारा आयोजित सत्याग्रह में तथा स्वतन्त्रता संग्राम में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। श्रीमद्दयानन्द आर्य विद्यापीठ के कुलपति, हरियाणा प्रान्तीय पुरातत्व संग्रहालय, झज्जर के संस्थापक अध्यक्ष, गुरुकुल समिति (भारत) के अध्यक्ष तथा केन्द्रीय संस्कृत परिषद्, पुरातत्व संग्रहालय की परामर्शदातृ परिषद्, अखिल भारतीय मुद्रा-परिषद्, आर्य विद्या सभा, गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की प्रबन्ध समिति आदि संस्थाओं के सदस्य हैं।

इनके 36 से अधिक विभिन्न विषयों पर ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें हरियाणा की प्राचीन मुद्रांक, हरियाणा के वीर योधेय, हरियाणा की संस्कृति, रूस में पन्द्रह दिन, विदेश यात्रा आदि आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। हरियाणा के प्राचीन शस्त्रास्त्र, हरियाणा के प्राचीन टकसाल स्थान नामक ग्रंथ प्रकाशनाधीन हैं।

श्री विष्णु प्रभाकर

कालजयी जीवन वृत्त 'आवारा मसीहा' के लेखक श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फर नगर के मीरपुरा गांव में 21 जून, 1912 को हुआ था। इनका जीवन बहुत संघर्षमय रहा है और इन्हीं विडम्बनाओं का फल है कि इन्हें 1929 से 1944 तक हिसार के पशुधन फार्म में नौकरी करनी पड़ी। इन्होंने अपने जीवन में सामाजिक, सांस्कृतिक व राष्ट्रीय आन्दोलन में विशेष रुचि ली और फलतः 1940-42 में पुलिस द्वारा निगरानी और 6 जून, 1940 को बड़ी तलाशी का शिकार बने। अप्रैल 1944 में सरकारी नौकरी छोड़ दी। इसके बाद लगभग दो वर्षों तक आकाशवाणी में ड्रामा प्रोड्यूसर लेकिन फिर यह कार्य भी छोड़ दिया। तब से श्री प्रभाकर स्वतन्त्र लेखन एवं साहित्य सृजन कर रहे हैं।

अब तक विष्णु प्रभाकर जी की लगभग 57 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें उपन्यास, कहानी-संग्रह, नाटक, एकांकी, यात्रा-संस्मरण, जीवनी, बाल साहित्य आदि की पुस्तकें हैं। इन्होंने कई पुस्तकों का अनुवाद एवं सम्पादन भी किया है।

इन्हें कई प्रान्तीय पुरस्कारों के अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार, पाब्लो नेरूदा सम्मान तथा सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

सेठ गोबिन्द दास

प्रख्यात स्वतन्त्रता सेनानी, प्रमुख सांसद् एवं वरिष्ठ साहित्यकार सेठ गोबिन्ददास का जन्म सन् 1896 को मध्य प्रदेश के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। इनकी बाल्यावस्था बहुत ही सुख एवं वैभव में बीती। इनकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध निष्ठा और देश प्रेम इनके जीवन में प्रारम्भ में ही घर कर गया था।

घर, परिवार और समाज के विरोध के बावजूद भी इन्होंने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और कई बार जेल यातनाएं झेलीं। इन्होंने अपना सारा जीवन राष्ट्र और हिन्दी की सेवा के लिये अर्पित किया हुआ था।

साहित्य रचना की ओर इनकी रुचि बचपन से ही थी और 16-17 वर्ष की आयु में ही इनकी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं।

सेठ जी ने साहित्य की सभी विधाओं को अपनी रचनाओं के द्वारा समृद्ध किया है परन्तु हिन्दी एकांकी साहित्य को इनकी देन सबसे अधिक है। इनके साहित्य पर गांधी विचार दर्शन का बहुत प्रभाव है। भारत में गठित संविधान सभा से लेकर ये जब तक जीवित रहे, संसद के सदस्य रहे।

श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा

लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के मर्मज्ञ श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा का जन्म हरियाणा राज्य के भिवानी जिला में लोहारी जाटू नामक गांव में 15 अगस्त, 1946 को हुआ है।

इन्होंने वर्ष 1967 में पंजाब विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम. ए. की डिग्री प्राप्त की और उस के बाद अपना जीवन राजनीतिक शास्त्र के व्याख्याता के रूप में शुरू किया। इसके बाद इन्होंने आई. पी. एस. (भारतीय पुलिस सेवा) की परीक्षा उत्तीर्ण की और इसमें सम्मिलित हो गए। वर्ष 1970 में ये आई. ए. एस. (भारतीय प्रशासनिक सेवा) की प्रतियोगी परीक्षा में ससम्मान उत्तीर्ण हुए और उसके बाद विभिन्न उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते आ रहे हैं।

इस समय आप निदेशक शिक्षा विभाग, (स्कूल) हरियाणा का कार्यभार संभाले हुए हैं।

श्री शर्मा हरियाणा के लोक गीतों, लोक नाट्य और लोक गायकों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं से बहुत गहरे जुड़े हुए हैं। इन्होंने विभिन्न प्रकार के 500 लोक गीत और लोक धुनें हरियाणा सरकार को रिकार्ड करके दी हैं।

श्री राजेन्द्र

बहुभाषी पत्रकार एवं पत्रकारिता विधा के सशक्त लेखक श्री राजेन्द्र का जन्म 23 अप्रैल, 1918 को पंजाब के फ़िल्लौर नामक स्थान पर हुआ। इन्होंने पंजाब, विश्वविद्यालय लाहौर (अब पाकिस्तान) से एम. ए. तथा जे. डी. तक उच्च शिक्षा प्राप्त की।

श्री राजेन्द्र ने शिक्षा के बाद अपना जीवन एक पत्रकार एवं पत्रकारिता प्राध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया। आप कई वर्षों तक पंजाब विश्व-विद्यालय लाहौर के पत्रकारिता विभाग में पहले प्राध्यापक और बाद में विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। ये कई वर्षों तक उत्तर भारत के अंग्रेजी दैनिक ट्रिब्यून के भी उप सम्पादक रहे। इन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा संचालित एवं सेवाग्राम से प्रकाशित उर्दू हरिजन का भी सम्पादन किया। ये कुछ वर्षों तक नवभारत टाइम्स एवं लोक वाणी के विशेष सम्वाददाता भी रहे।

इन्होंने भारत मुक्ति संग्राम में भी सक्रिय रूप से भाग लिया है और 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में जेल यात्रा की।

स्वतन्त्रता के बाद इन्होंने लोक सम्पर्क विभाग में प्रेस अधिकारी के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। बाद में इन्होंने कई वर्ष तक इस विभाग के मखपत्र 'प्रदीप' का सम्पादन किया। इस के बाद इसी विभाग में उप निदेशक, संयुक्त निदेशक के पद पर कार्य किया और यहां से ही सेवा निवृत्त हुए। लोक सम्पर्क एवं पत्रकारिता विधा में इन के द्वारा लिखित 'लोक सम्पर्क', 'संवाद और संवाददाता' और 'लोक सम्पर्क: सिद्धांत और साधन' प्रमुख कृतियां हैं। सम्प्रति पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के लोक सम्पर्क डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्राध्यापक हैं।

डॉ० राम गोपाल

वैदिक वाङ्मय एवं संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वान डॉ० राम गोपाल का जन्म 1 अक्तूबर, 1925 को जिला हिसार के आदमपुर गांव में हुआ। इनका शिक्षा काल बहुत ही समुज्ज्वल रहा है। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. 79 प्रतिशत अंक प्राप्त कर प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया और लब्धांकों का एक नया मानदण्ड स्थापित किया। दिल्ली विश्वविद्यालय से संस्कृत में पी एच. डी. प्राप्त करने वाले ये पहले विद्वान हैं। आज कल

आप पंजाब विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष एवं कालीदास प्रोफैसर ऑफ संस्कृत हैं।

डॉ० रामगोपाल की वैदिक भाषा और संस्कृत साहित्य की समृद्धि के लिये की गई प्रभूत सेवाओं के लिये वर्ष 1971 में इन्हें राष्ट्रपति ने "सर्टिफिकेट आफ ऑनर इन-संस्कृत" प्रदान कर सम्मानित किया। इसी वर्ष विशिष्ट संस्कृत साहित्यकार के रूप में हरियाणा सरकार ने भी इनको सम्मानित किया।

"इंडिया आफ कल्पसूत्राज" वैदिक व्याकरण (दो भाग) तथा "वैदिक-व्याख्या-विवेचन" इन की अति प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित कृतियां हैं।

डॉ० देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी

संघर्षशील साहित्यिकार डॉ० देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी का जन्म 6 सितम्बर, 1917 को नाभा हाउस, कसौली में हुआ था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पंजाब के जिला पटियाला के ककराला गांव में और माध्यमिक शिक्षा नाभा में प्राप्त की। शेष ज्ञानी, बी. ए., एम. ए. (हिन्दी) तथा पी एच. डी. तक की उच्च शिक्षा आजीविका काल में पंजाब विश्वविद्यालय से प्राप्त की। पंजाब सरकार के विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए ये हाल ही में गुरु नानक देव विश्वविद्यालय से प्रवक्ता के पद से सेवा निवृत्त हुए हैं।

डॉ० विद्यार्थी की अभिरुचि प्रारम्भ से ही शोध की ओर रही है और इसी का परिणाम, हरियाणा की प्राचीन हिन्दी रचना, पांच हिन्दी सीहर्फियां, आकाशवाणी के माध्यम से, विचार विलास, अनुभव और अनुमान, विष वाणी, छठा पांडव, इशक लहर दरियाव कवि ग्वाल, पंजाब के दरबारी हिन्दी कवियों के परिप्रेक्ष्य में महाकवि ग्वाल का विशेष अध्ययन जैसी कृतियां हैं। इनके अतिरिक्त खुले लेख शीर्षक से इन के द्वारा अनुदित अध्यापक पूर्ण सिंह के पंजाबी निबन्धों का संकलन भी प्रकाशनाधीन है।

श्री क्षेम चन्द्र 'सुमन'

वर्चस्वी कवि एवं साहित्यकार श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला मेरठ के बावूगढ़ स्थान पर 16 सितम्बर, 1916 को हुआ। इन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय ज से स्नातक की उपाधि ग्रहण की।

श्री सुमन ने आलोचना, मनस्वी, शिक्षा सुधा, आर्य आदि त्रैमासिक, मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन के अतिरिक्त आर्य सन्देश तथा आर्य मित्र नामक साप्ताहिक एवं हिन्दी दैनिक "हिन्दी मिलाप" के सम्पादन में भी सहकारी सम्पादक के रूप में सहयोग दिया है।

मेरठ, ज्वालापुर और दिल्ली की कई शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, संचालन एवं पथ प्रदर्शन में इनका योग रहा है। मल्लिका, बन्दी के गान, कारा (काव्य संग्रह), हमारा संघर्ष, आज़ादी की कहानी, नेता जी सुभाष, नए भारत के निर्माता, हिन्दी साहित्य: नए प्रयोग, साहित्य विवेचन आदि इनकी बहुचर्चित प्रसिद्ध कृतियां हैं।

डॉ० रणजीत सिंह

साहित्य की प्राय: सभी विधाओं के लेखक डॉ० रणजीत सिंह का जन्म 8 मार्च, 1926 को हरियाणा के ज़िला हिसार के नारनौंद गांव में हुआ। इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में शास्त्री, प्रभाकर, एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत एवं प्राचीन इतिहास), एम. ओ. एल., बी. टी., विद्याभास्कर तथा पी एच. डी. की उपाधियां प्राप्त की हुई हैं। सम्प्रति सी. आर. किसान महाविद्यालय जींद में प्रिंसिपल हैं। इन के लेख, कहानियां एवं कविताएं आदि भारत की मूर्धन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। 'हरियाणा का हिन्दी साहित्य में प्रयोग' तथा 'हरियाणवी सांगों का वस्तुपरक विश्लेषण' शीर्षक से दो शोध पत्र राज्य के भाषा-विभाग द्वारा आयोजित गोष्ठियों में भी पढ़े गए हैं।

एस० वाई० कुरैशी

साहित्य, कला में समान अभिरुचि रखने वाले श्री एस० वाई० कुरैशी का जन्म 11 जून, 1947 को दिल्ली में हुआ। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफैन्स कालिज से 1969 में इतिहास में एम. ए. की डिग्री प्राप्त की।

ये 1969 से 1970 तक इतिहास के व्याख्याता रहे हैं। मार्च 1971 से ये भारतीय

असमिक सेवा (आई. ए. एस.) में है और अब तक विभिन्न उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करते रहे। सम्प्रति निदेशक, लोक सम्पर्क एवं सांस्कृतिक कार्य विभाग, हरियाणा।

आपकी उर्दू अदब और सांस्कृतिक गतिविधियों में विशेष रुचि है। लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा के महत्वपूर्ण प्रकाशन 'हाली' का सम्पादन भी इन्होंने किया है।

डॉ० शंकर लाल यादव

हरियाणवी लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० शंकर लाल यादव का जन्म 15 अक्तूबर, 1920 को हुआ। ये मूल रूप से हरियाणा राज्य के जिला महेन्द्रगढ़ के सारनवास गांव के रहने वाले हैं। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत में एम. ए. तथा शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की हुई है तथा पी. एच. डी. की शोध डिग्री भी प्राप्त की हुई है। तेलगु भाषा में भी दक्षता प्रमाण पत्र प्राप्त किया हुआ है। ये पिछले 29 वर्षों से स्नातकोत्तर कक्षाओं को अध्यापन करवा रहे हैं। सम्प्रति लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ रीडर हैं।

डॉ० यादव के तीन शोध ग्रंथ तथा लगभग 20 शोध निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। हरियाणवी जन-जीवन और लोक साहित्य एवं संस्कृति इन के अध्ययन एवं शोध का प्रारम्भ से ही विषय रहे हैं।

डॉ० जगदेव सिंह

प्रसिद्ध भाषा विद् डॉ० जगदेव सिंह का जन्म 15 मई, 1915 को हरियाणा राज्य के जिला रोहतक के भगवतीपुर गांव में हुआ। इनका शिक्षा जीवन बहुत उज्ज्वल रहा है। इन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा पैतृक गांव में और इंटर मीडिएट तक रोहतक तथा वर्ष 1938 में प्रथम श्रेणी में एम. ए. (संस्कृत) पंजाब विश्व विद्यालय से उत्तीर्ण की। वर्ष 1958 में पैंसिलवानिया से लिंगविस्टक्स में एम. ए. तथा 1959 में भाषाओं में फिलैडैलफिया (यू. एस. ए.) से पी. एच.डी. की डिग्री प्राप्त की।

डॉ० सिंह 16 वर्षों तक पंजाब शिक्षा विभाग में लैक्चरर तथा बाद में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रीडर तथा प्रोफैसर रहे हैं। सम्प्रति महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक में प्रति उपकुलपति हैं। ये कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के भी सदस्य हैं तथा इन्होंने देश-विदेश का व्यापक भ्रमण भी किया हुआ है।

स्थानीय बोलियों का अध्ययन, लोक गीत, भारतीय भाषाओं की परम्परा, उत्तर पश्चिम क्षेत्रीय चीनी-तिब्बतियन बोलियां आदि विषय इनके अनुसन्धान के क्षेत्र हैं। इनका बांगरू का विवरणात्मक व्याकरण नामक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। आजकल ये बांगरू क्रियाएं, हिन्दी-क्रियाएं आदि विभिन्न योजनाओं पर अनुसन्धान कर रहे हैं।

श्री चिरंजीत

प्रख्यात रेडियो नाटककार, कवि एवं व्यंग्यकार श्री चिरंजीत का जन्म सन् 1919 में पंजाब में हुआ। परन्तु सन् 1941 से ये स्थायी रूप से दिल्ली में रह रहे हैं। सम्प्रति, आकाशवाणी निदेशालय में चीफ प्रोड्यूसर, ड्रामा हैं।

श्री चिरंजीत वस्तुतः एक बहुमुखी प्रतिभा हैं। कवि एवं हास्य व्यंग्यकार होने के साथ साथ इन्हें नाटक विधा विशेषतः रेडियो नाट्य विधा में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इन के अनुसार नाटक लोक रंजन, प्रशिक्षण और संप्रेषण का सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम है। इन के नाटक सोद्देश्य तथा राष्ट्रीय भावना से युक्त होते हैं।

आपकी प्रकाशित पुस्तकों में से 'मधु की रात और जिन्दगी', 'कहे पैरोडीदास', 'चिलमन' आदि काव्य संग्रह, 'घेरा', 'तस्वीर उसकी,' 'अभिमन्यु चक्रव्यूह में', 'ढोल की पोल' व अन्य झलकियां, 'मन्दिर की जोत' आदि नाटक तथा 'मास्टर सिलबिल' और 'सिलबिल की सिलबिलाहट' आदि हास्य कथाएं बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

डॉ० भीम सिंह

हरियाणवी लोक नाट्य की शिल्प विधि पर अनुसन्धानरत डॉ० भीम सिंह का जन्म हरियाणा के जिला रोहतक के अटाल गांव में सन् 1933 में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल विश्व

विद्यालय कांगड़ी हरिद्वार से संबद्ध शाखा गुरुकुल मटिण्डु में और तदनन्तर पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से बी.ए. आनर्स एवं एम. ए. की डिग्रियां प्राप्त कीं । वर्ष 1971 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से पी एच. डी. की। ये गत 21 वर्षों से निरन्तर अध्ययन-अध्यापन में संलग्न हैं । सम्प्रति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं।

इन के हरियाणवी भाषा तथा लोक साहित्य पर एक दर्जन से अधिक शोधपत्र विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रबन्ध प्रवाह, लौह पुरुष सरदार पटेल, जायसी काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन इनकी बहुचर्चित प्रकाशित कृतियां हैं।

श्री कश्मीरी लाल जाकिर

उर्दू के प्रख्यात कथाकार एवं नाटक लेखक श्री कश्मीरी लाल जाकिर का जन्म अप्रैल 1919 में हुआ । इन की किशोरावस्था कश्मीर राज्य में बीती । ये अपने छात्र जीवन से ही वहां के राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गये थे। अपने सेवाकाल में इन्होंने विकास विभाग तथा हरियाणा राज्य के शिक्षा विभाग में विभिन्न उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर कार्य किया । सम्प्रति पंजाब विश्व विद्यालय के "सैन्टर फार कंटीन्यूइंग एजूकेशन" विभाग में प्रोग्राम कोआर्डिनेटर हैं ।

श्री जाकिर ने अपनी सभी रचनाएं मूल रूप में उर्दू में लिखी हैं । इनकी रचनाएं हिन्दी और पंजाबी में भी अनूदित हो चुकी हैं। इनकी साहित्यिक सेवाओं को स्वीकारते हुए हरियाणा सरकार ने इन्हें 1969–70 में विशिष्ट उर्दू साहित्यकार के रूप में सम्मानित किया ।

सिन्दूर की राख, छटी का दूध, मुझे जीने का हक मिल गया है, चार मील लम्बी सड़क, मेरा गांव मेरी आत्मा है, धरती सदा सुहागिन, पूरण मासी (सभी उपन्यास), चिराग की लौ, जाकिर की तीन कहानियां, हम सब साक्षी हैं (सभी कहानी संग्रह), सीमा बर्फ और फूल, हमसाया, नया सवेरा (सभी नाटक) आदि इन की प्रकाशित पुस्तकें हैं।

ਪ੍ਰੋ. ਰਾਜਿੰਦਰ ਕੌਰ ਰਿਆੜ
[illegible]
[illegible]
ਕੁਰੂਕਸ਼ੇਤਰ
ਮੋਬਾ: 94162-23354